एक एक कदम

एक
एक
कदम

कोई दो सौ वर्ष पहले, जापान में दो राज्यों में युद्ध छिड़ गया था। छोटा जो राज्य था, भयभीत था; हार जाना उसका निश्चित था। उसके पास सैनिकों की संख्या कम थी। थोड़ी कम नहीं थी, बहुत कम थी। दुश्मन के पास दस सैनिक थे, तो उसके पास एक सैनिक था। उस राज्य के सेनापतियों ने युद्ध पर जाने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि यह तो सीधी मूढ़ता होगी; हम अपने आदमियों को व्यर्थ ही कटवाने ले जाएं। हार तो निश्चित है। और जब सेनापतियों ने इनकार कर दिया युद्ध पर जाने से...उन्होंने कहा कि यह हार निश्चित है, तो हम अपना मुंह पराजय की कालिख से पोतने जाने को तैयार नहीं; और अपने सैनिकों को भी व्यर्थ कटवाने के लिए हमारी मर्जी नहीं। मरने की बजाय हार जाना उचित है। मर कर भी हारना है, जीत की तो कोई संभावना मानी नहीं जा सकती।

सम्राट भी कुछ नहीं कह सकता था, बात सत्य थी, आंकड़े सही थे। तब उसने गांव में बसे एक फकीर से जाकर प्रार्थना की कि क्या आप मेरी फौजों के सेनापति बन कर जा सकते हैं? यह उसके सेनापतियों को समझ में ही नहीं आई बात। सेनापति जब इनकार करते हों, तो एक फकीर को--जिसे युद्ध का कोई अनुभव नहीं, जो कभी युद्ध पर गया नहीं, जिसने कभी कोई युद्ध किया नहीं, जिसने कभी युद्ध की कोई बात नहीं की--यह बिलकुल अव्यावहारिक आदमी को आगे करने का क्या प्रयोजन है?

लेकिन वह फकीर राजी हो गया। जहां बहुत-से व्यावहारिक लोग राजी नहीं होते वहां अव्यावहारिक लोग राजी हो जाते हैं। जहां समझदार पीछे हट जाते हैं, वहां जिन्हें कोई अनुभव नहीं है, वे आगे खड़े हो जाते हैं। वह फकीर राजी हो गया। सम्राट भी डरा मन में, लेकिन फिर भी ठीक था। हारना भी था तो मर कर हारना ही ठीक था। फकीर के साथ सैनिकों को जाने में बड़ी घबड़ाहट हुईः यह आदमी कुछ जानता नहीं! लेकिन फकीर इतने जोश से भरा था, सैनिकों को जाना पड़ा। सेनापति भी सैनिकों के पीछे हो लिए कि देखें, होता क्या है? जहां दुश्मन के पड़ाव पड़े थे उससे थोड़ी ही दूर उस फकीर ने एक छोटे-से मंदिर में सारे सैनिकों को रोका, और उसने कहा कि इसके पहले कि हम चलें, कम से कम भगवान को कह दें कि हम लड़ने जाते हैं और उनसे पूछ भी लें कि तुम्हारी मर्जी क्या है। अगर हराना ही हो तो हम वापस लौट जाएं और अगर जिताना हो तो ठीक।

सैनिक बड़ी आशा से मंदिर के बाहर खड़े हो गए। उस आदमी ने हाथ जोड़ कर आंख बंद करके भगवान से प्रार्थना की, फिर खीसे से एक रुपया निकाला और भगवान से कहा कि मैं इस रुपए को फेंकता हूं, अगर यह सीधा गिरा तो हम समझ लेंगे कि जीत हमारी होनी है और हम बढ़ जाएंगे आगे, और अगर यह उलटा गिरा तो हम मान लेंगे कि हम हार गए, हम वापस लौट जाएंगे, राजा से कह देंगे, व्यर्थ मरने की व्यवस्था मत करो; हमारी हार निश्चित है, भगवान की भी मर्जी यही है।

सैनिकों ने गौर से देखा, उसने रुपया फेंका। चमकती धूप में रुपया चमका और नीचे गिरा। वह सिर के बल गिरा था; वह सीधा गिरा था। उसने सैनिकों से कहा, अब फिक्र छोड़ दो। अब खयाल ही छोड़ दो कि तुम हार सकते हो। अब इस जमीन पर कोई तुम्हें हरा नहीं सकता। रुपया सीधा गिरा था। भगवान साथ थे। वे सैनिक जाकर जूझ गए। सात दिन में उन्होंने दुश्मन को परास्त कर दिया। वे जीते हुए वापस लौटे। उस मंदिर के पास उस फकीर ने कहा, अब लौट कर हम धन्यवाद तो दे दें!

वे सारे सैनिक रुके, उन सबने हाथ जोड़ कर भगवान से प्रार्थना की और कहा, तेरा बहुत धन्यवाद कि तू अगर हमें इशारा न करता जीतने का, तो हम तो हार ही चुके थे। तेरी कृपा और तेरे इशारे से हम जीते हैं।

एक एक कदम

उस फकीर ने कहा, इसके पहले कि भगवान को धन्यवाद दो, मेरे खीसे में जो सिक्का पड़ा है, उसे गौर से देख लो। उसने सिक्का निकाल कर बताया, वह सिक्का दोनों तरफ सीधा था, उसमें कोई उलटा हिस्सा था ही नहीं। वह सिक्का बनावटी था, वह दोनों तरफ सीधा था, वह उलटा गिर ही नहीं सकता था!

उसने कहा, भगवान को धन्यवाद मत दो। तुम आशा से भर गए जीत की, इसलिए जीत गए। तुम हार भी सकते थे, क्योंकि तुम निराश थे और हारने की कामना से भरे थे। तुम जानते थे कि हारना ही है।

जीवन में सारे कामों की सफलताएं इस बात पर निर्भर करती हैं कि हम उनकी जीत की आशा से भरे हुए हैं या हार के खयाल से डरे हुए हैं। और बहुत आशा से भरे हुए लोग थोड़ी-सी सामर्थ्य से इतना कर पाते हैं, जितना कि बहुत सामर्थ्य के रहते हुए भी निराशा से भरे हुए लोग नहीं कर पाते हैं। सामर्थ्य मूल्यवान नहीं है। सामर्थ्य असली संपत्ति नहीं है। असली संपत्ति तो आशा है--और यह खयाल है कि कोई काम है जो होना चाहिए; जो होगा; और जिसे करने में हम कुछ भी नहीं छोड़ रखेंगे।

एक करोड़ की बात बड़ी मालूम पड़ सकती है इतने थोड़े-से लोगों को। सीमित साधनों के मित्रों को बहुत बड़ी बात मालूम पड़ सकती है। वह बहुत बड़ी बात इसलिए मालूम पड़ती है कि एक करोड़ की संख्या को हम एकदम से गिनते हैं। एक करोड़ संख्या बहुत बड़ी है!

एक घटना मुझे याद आती है। एक गांव के पास एक बहुत सुंदर पहाड़ था। उस सुंदर पहाड़ पर एक मंदिर था। वह दस मील की ही दूरी पर था और गांव से यह मंदिर दिखाई पड़ता था। दूर-दूर के लोग उस मंदिर के दर्शन करने आते और उस पहाड़ को देखने जाते। उस गांव में एक युवक था, वह भी सोचता था, कभी मुझे जाकर देख आना है। लेकिन करीब था, कभी भी देख आएगा। लेकिन एक दिन उसने तय ही कर लिया कि मैं कब तक रुका रहूंगा; आज रात मुझे उठ कर चले जाना है। सुबह से धूप बढ़ जाती थी, इसलिए वह दो बजे रात उठा। उसने लालटेन जलाई और गांव के बाहर आया। घनी अंधेरी रात थी, वह बहुत डर गया। उसने सोचा, छोटी-सी लालटेन है, दोत्तीन कदम तक प्रकाश पड़ता है, और दस मील का फासला है। इतना दस मील का अंधेरा इतनी छोटी-सी लालटेन से कैसे कटेगा? इतना है अंधेरा, इतना विराट, इतनी छोटी-सी है लालटेन पास में, इससे क्या होगा? इससे दस मील पार नहीं किए जा सकते। सूरज की राह देखनी चाहिए, तभी ठीक होगा। वह वहीं गांव के बाहर बैठ गया।

ठीक भी था, उसका गणित बिलकुल सही था। और आमतौर से ऐसा ही गणित अधिकतम लोगों का होता है। तीन फीट तक तो प्रकाश पहुंचता है और दस मील लंबा रास्ता है। भाग दे दें दस मील में तीन फीट का, तो कहीं इस लालटेन से काम चलने वाला है? लाखों लालटेन चाहिए, तब कहीं कुछ हो सकता है।

वह वहां डरा हुआ बैठा था और सुबह की प्रतीक्षा करता था। तभी एक बूढ़ा आदमी एक और छोटे-से दीए को हाथ में लिए चला जा रहा था। उसने उस बूढ़े से पूछा, पागल हो गए हो? कुछ गणित का पता है? दस मील लंबा रास्ता है, तुम्हारे दीए से तो एक कदम भी रोशनी नहीं पड़ती है! उस बूढ़े ने कहा, पागल, एक कदम से ज्यादा कभी कोई चल पाया है? एक कदम से ज्यादा मैं चल भी नहीं सकता, रोशनी चाहे हजार मील पड़ती रहे। और जब तक मैं एक कदम चलता हूं, तब तक रोशनी एक कदम आगे बढ़ जाती है। दस मील क्या, मैं दस हजार मील पार कर लूंगा। उठ आ, तू क्यों बैठा है? तेरे पास तो अच्छी लालटेन है। एक कदम तू आगे चलेगा, रोशनी उतनी आगे बढ़ जाएगी।

जिंदगी में, अगर कोई पूरा हिसाब पहले लगा ले तो वहीं बैठ जाएगा, वहीं डर जाएगा और खत्म हो जाएगा। जिंदगी में एक-एक कदम का हिसाब लगाने वाले लोग हजारों मील चल जाते हैं और हजारों मील का हिसाब लगाने वाले लोग एक कदम भी नहीं उठाते, डर के मारे वहीं बैठे रह जाते हैं।

तो मैं आपको कहूंगा, इसकी बहुत फिक्र न करें। हिसाब बहुत लंबा है, चिंता की बात नहीं है। आप यह तो सोचें ही मत कि एक करोड़ तो बहुत होते हैं। और यह भी मत सोचें, जैसा दुर्लभजी भाई ने कहा कि एक-एक लाख रुपया सौ लोग दे दें। एक-एक लाख देने वाले सौ लोग नहीं खोजे जा सकते, लेकिन एक-एक रुपया देनेवाले एक करोड़ लोग आज ही खोजे जा सकते हैं। एक-एक लाख की बात ही मत सोचें; एक-एक रुपए की बात सोचें। एक-एक कदम की बात सोचें, दस मील की क्यों बात सोचें?

इसमें तो चिंता की कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। एक-एक रुपया देने वाले एक करोड़ लोग खोज लेना इतना आसान है, इतना आसान कि आपसे न हो सके तो मुझसे कह दें। आपसे हो सके रुपए का तो आप कर लेना, नहीं तो मुझसे कह देना, वह भी मैं कर दूंगा। उसकी कोई बहुत चिंता की बात नहीं है। उसमें बहुत घबड़ाने की बात नहीं है। एक-एक लाख रुपए का तो मैं कोई वायदा नहीं दे सकता, लेकिन एक-एक रुपए वालों का वायदा दे सकता हूं; उसमें क्या कठिनाई है? इसलिए बहुत इस विचार में न पड़ें कि इतना कैसे होगा, इतना तो कोई कठिन नहीं है। इतना तो कोई कठिन नहीं है।

और इस मुल्क में, जहां कि भिखारियों की बड़ी परंपरा है। अगर आप नहीं कर सके तो मैं भिखारी बन सकता हूं; इसमें कोई कठिनाई नहीं है। यहां महावीर भिखारी हैं, यहां बुद्ध भिखारी हैं, यहां गांधी भिखारी हैं--यहां कोई तकलीफ नहीं है भिखारी होने में। यहां तो राजा होने में बड़ी तकलीफ है। यहां राजा होना बहुत निंदित है; बहुत दुष्कर्म है। यहां भिखारी होना तो इतने बड़े आदर की बात है जिसका कोई हिसाब नहीं।

गांधी देहरादून में थे एक बार। और रात जब सभा पूरी हुई तो उन्होंने कहा कि कोई भी आदमी बिना दिए नहीं जाएगा, कुछ न कुछ दे जाएगा। और वे दोनों हाथ लेकर भीड़ में उतर गए और कहा कि कोई भी, जिसके सामने भी मेरा हाथ जाता है, वह कुछ न कुछ दे। तो जिसको जो बन सका, जिसके पास जो था, वह दे दिया। हाथ भर गया। तो गांधी उसको वहीं गिरा देते जमीन पर और फिर हाथ खाली कर लेते। और कह देते कि यह मेरी संपत्ति जो पड़ी है, लोग खयाल लें, कहीं यहां-वहां गड़बड़ न हो जाए। वहां उस भीड़ में पच्चीसों बार हाथ भरा और उसको उन्होंने जमीन पर गिरा दिया। फिर वे तो गिरा कर चले गए और कार्यकर्ताओं को कह गए कि जमीन से बीन लाना।

महावीर त्यागी उन कार्यकर्ताओं में एक थे। वह बीन-बान कर लाए। बहुत-से रुपए थे, बहुत-से गहने थे, रात एक बज गया वह सब बीनने में। लोगों के पैरों में यहां-वहां हो गया, वे सब जमीन पर फेंक गए थे उस भीड़ में। रात को सब हिसाब हुआ। वहां पहुंचे तो देखा गांधी जागे हुए हैं। उन्होंने कहा, सब हिसाब ले आए? उन्होंने सब हिसाब दिया, इतने हजार रुपए हुए हैं, यह-यह इतना हुआ है।

एक औरत के कान का एक ही बुंदा था। गांधी ने कहा, दूसरा बुंदा कहां है? कोई औरत मुझे एक बुंदा देगी, यह तुम खयाल कर सकते हो? तुम वापस जाओ, एक बुंदा और होना चाहिए, क्योंकि मैं मांगने खड़ा हो जाऊंगा तो कोई औरत ऐसी हो सकती है हमारे मुल्क में कि वह एक कान का बुंदा दे दे और एक घर ले जाए! यह बिलकुल संभव नहीं है। इसमें गलती तुम्हारी होगी। तुम जाओ; दूसरा बुंदा वहां होना चाहिए।

महावीर त्यागी ने पीछे कहा कि हम इतने घबड़ाए कि यह बूढ़ा आदमी है कैसा! एक तो वहां डाल दिया, यह सब उपद्रव किया और अब हम इतनी रात बीन-बान कर लाए हैं अंधेरे में और कहता है कि एक बुंदा इसमें कम है! वापस गए। वहां तो हैरान हुए, एक बुंदा ही नहीं मिला और कुछ गहने भी मिले! वह बुंदा तो मिल गया। गांधी ने कहा, मैं मान ही नहीं सकता था कि इस मुल्क में मैं मांगने जाऊं तो एक बुंदा कोई दे दे; दोनों ही देगी। तो इसलिए वह तो कमी थी। यह तुम और भी ले आए, कल सुबह और देख लेना गौर से, वहां कुछ और भी...।

तो जिस मुल्क में मांगने वालों की बहुत बड़ी परंपरा हो। और इस मुल्क का बड़ा मजा है, और वह मजा यह है कि यहां मांगने वाला देने वाले से छोटा नहीं होता। यहां मांगने वाला देने वाले से छोटा नहीं होता, यहां मांगने वाला देने वाले से बड़ा ही रहता है। और धन्यवाद मांगने वाला नहीं देता कि धन्यवाद दे कि आपने मुझे इतना दिया, मैं धन्यवाद दूं। धन्यवाद देने वाला ही देता है कि मैं धन्यवाद करता हूं कि आपने ले लिया, नहीं लेते तो मैं क्या करता।

मैं जयपुर में था, कल रात ही बात कर रहा था। एक बूढ़े आदमी ने आकर बहुत-से बंडल रखे नोटों के और मुझे नमस्कार किया। मैंने कहा, नमस्कार मैं ले लेता हूं और रुपए की अभी जरूरत नहीं है, कभी जरूरत होगी तो मैं मांगने निकलूंगा तो आपसे मांग लूंगा। रुपया आप रख लें, अभी तो मुझे कोई जरूरत है नहीं। मैंने तो ऐसे ही कह दिया, लेकिन देखा तो उनकी आंखों में आंसू आ गए हैं। वे सत्तर साल के बूढ़े आदमी हैं। उन्होंने कहा कि आप कहते क्या हैं! आपको जरूरत है, इसलिए मैंने दिया कब! मेरे पास है, अब मैं इसका

क्या करूं? अच्छे आदमियों को दे देता हूं कि इसका कुछ हो जाएगा। मैं तो इसका कुछ कर नहीं सकता। आपको जरूरत है इसलिए मैंने दिया ही नहीं, इसलिए आपकी जरूरत का सवाल नहीं है; मेरे पास है, मैं क्या करूं? मुझे देना जरूरी है। और मैं अच्छे आदमियों को दे देता हूं कि इसका कुछ अच्छा हो जाएगा।

और फिर उस बूढ़े आदमी ने कहा कि आपको पता नहीं, आप इनकार करके मुझे कितना सदमा पहुंचा रहे हैं। मैं इतना गरीब आदमी हूं कि मेरे पास सिवाय रुपए के और कुछ है ही नहीं। मैं इतना गरीब आदमी हूं कि मेरे पास सिवाय रुपए के और कुछ है ही नहीं! तो जब कोई रुपया लेने से इनकार कर देता है तो फिर मेरी मुश्किल हो जाती है, फिर अब मैं क्या करूं! मेरे मन में कुछ करने का खयाल आता है, तो सिवाय रुपए के मेरे पास कुछ भी नहीं है। तो आप इसको इनकार न करें। आप इसको फेंक दें, आग लगा दें, बाकी इनकार आपको नहीं करने दूंगा, क्योंकि फिर मेरे पास देने को कुछ और है ही नहीं--और देने का मेरे मन में खयाल आ गया है। आप कृपा करें और इसको ले लें।

इसलिए पैसे के लिए तो चिंता आप नहीं करें बहुत। और जिस दिन भी आपको लगे कि आपको पैसे की जरूरत है और वह आपसे नहीं होता है, आप सिर्फ मुझे कह देंगे, पैसा हो जाएगा। पैसे की बहुत चिंता नहीं है। वह मैं नहीं मांगता हूं, यह बात दूसरी है। लेकिन जिस दिन मांगूं तो पैसा! पैसे जैसी सस्ती चीज और दुनिया में कुछ भी नहीं है; जो कोई भी दे देगा। पैसा देने में कोई भी आदमी इतना कमजोर नहीं है कि पैसा न दे दे। आदमी तो दिल दे देता है, प्राण दे देता है, पैसे में तो कुछ भी नहीं है। तो इसलिए उसकी बहुत चिंता की बात नहीं है। और हिम्मत से काम में लग जाएं तो आप पाएंगे कि वह काम अपने आप लेता चला आता है। वह अपने आप लेता चला आता है।

अब मुझे जगह-जगह लोग, न मालूम कितने लोग आकर कहते हैं कि हमें दस हजार रुपए लगा देने हैं। मैं उनको क्या कहूं? कहां लगा दें? मेरे पास तो कोई जरूरत है नहीं। अब मैं कहां ले जाऊं? इन रुपयों का मैं क्या करूंगा? तो वे कहते हैं कि कभी जरूरत हो तो, कोई काम हो तो!

लोग, आप सोचते होंगे कि इसलिए नहीं देते कि नहीं देना चाहते। आप हैरान होंगे, मेरा अपना अनुभव यह है कि लोग संकोच में रहते हैं कि हम कैसे कहें कि पैसा दें। मेरा अपना अनुभव यही है कि लोग संकोच में होते हैं कि हम कैसे कहें, किस मुंह से कहें! पैसे जैसी सड़ी चीज को देने के लिए किस मुंह से कहें कि हम पैसा देना चाहते हैं! जिस दिन उनको पता चल जाए कि जरूरत है, तो पैसा बहा चला आता है, उसकी कोई कठिनाई नहीं है। उसकी जरा भी चिंता की बात नहीं है। उससे ज्यादा व्यर्थ तो कोई चिंता नहीं है, अगर उसके लिए बहुत चिंता करते हैं। लेकिन चिंता इसलिए पैदा होती है कि आप लाख-लाख का हिसाब लगाते हैं। जिस आदमी के पास लाख रुपया होता है, उस आदमी की उतनी ही ताकत पैसा छोड़ने की कम हो जाती है। जिसके पास एक रुपया होता है, उसकी ताकत छोड़ने की बहुत होती है।

एक फकीर था, मुसलमान फकीर, हसन। वह एक छोटे-से झोपड़े में रहता था। उस झोपड़े में इतनी थोड़ी जगह थी कि हसन और उसकी पत्नी, बस दो ही सो पाते थे। रात सोए थे, वर्षा की रात थी, अंधेरी रात थी। कोई आधी रात किसी आदमी ने आकर दरवाजा खटखटाया। तो हसन ने अपनी पत्नी से कहा, दरवाजा खोल! मालूम होता है कोई भटक गया राहगीर है। उसकी पत्नी ने कहा, देखते नहीं हैं, यहां जगह कहां है दो से ज्यादा के लिए!

उस फकीर ने कहा, पागल, यह कोई अमीर का महल नहीं है कि जगह कम पड़ जाए। यह गरीब की झोपड़ी है। अमीर के महल छोटे होते हैं, गरीब की झोपड़ी तो बड़ी होती है। अमीर का महल नहीं है यह कोई कि जगह कम पड़ जाए, यह गरीब की झोपड़ी है। अभी हम दो लेटे थे, अब हम तीन बैठेंगे। जगह काफी हो जाएगी। दरवाजा खोल। द्वार आया हुआ आदमी वापस लौट जाए?

दरवाजा खोल दिया। वह आदमी आकर बैठ गया। वे दोनों उठ कर बैठ गए, तीनों बैठ कर गप-शप करने लगे। दरवाजा अटका है। फिर दो आदमी आए और दरवाजा खटखटाया। तो वह जो मेहमान आकर बाहर बैठा था किनारे पर, उससे हसन ने कहा, दरवाजा खोल मित्र जल्दी। उस आदमी ने कहा, आप कहते क्या हैं! यहां जगह बहुत कम है। उसने कहा कि जगह कम है? अगर जगह कम होती तो तू अंदर कैसे आ पाता? जगह

यहां बहुत ज्यादा है। उसने कहा, देखते नहीं हो, मुश्किल से हम तीन बैठे हुए हैं! हसन ने कहा, अभी हम बैठे हैं, फिर हम खड़े हो जाएंगे। लेकिन यह गरीब की झोपड़ी है, इसमें जगह कभी कम होती ही नहीं। दरवाजा खोल देना पड़ा, वे दो आदमी भीतर आ गए। वे पांचों खड़े होकर बातचीत करने लगे। और तभी एक गधे ने आकर, वर्षा में भीगे हुए एक गधे ने आकर द्वार खटखटाया, सिर मारा। हसन ने द्वार पर खड़े आदमी से कहा, मित्र, दरवाजा खोल, कोई अतिथि आया है। उसने कहा, कोई अतिथि नहीं है, यह गधा है। उसने कहा, तुझे पता नहीं है, यह गरीब आदमी का झोपड़ा है, यहां गधे के साथ भी आदमी जैसा व्यवहार होता है। अमीर के महल पर आदमी से भी गधे जैसा व्यवहार होता है। यह तो गरीब का झोपड़ा है, यहां तो हम गधे से भी आदमी जैसा व्यवहार करते हैं। अमीर के मकान की बात अलग है, वहां तो आदमी से भी गधे जैसा व्यवहार होता है। दरवाजा खोल! अभी हम दूर-दूर खड़े हैं, अब हम पास-पास खड़े हो जाएंगे। लेकिन यह गरीब की झोपड़ी छोटी नहीं पड़ सकती है। अगर बहुत जरूरत पड़ी तो मैं अलग हो जाऊंगा, पत्नी मेरी बाहर हो जाएगी। लेकिन जब तक हमसे हो सकेगा, हम इसे बड़ा करते रहेंगे।

आप लाख पर विचार करते हैं तो परेशानी हो जाती है। लाख वाले आदमी के पास दिल होता ही नहीं। उसके पास दिल बड़ा छोटा हो जाता है। इसलिए उसकी बहुत चिंता न करें, उसकी बहुत चिंता न करें। लाख वाले के पास बड़ा दिल होगा तो वहां से लाख आ जाएंगे। नहीं तो रुपए वाले का दिल अब भी बड़ा है, इसमें कोई बहुत कठिनाई नहीं है। वह हो सकेगा। हिम्मत से उस काम में आप लगते हैं, तो उसके हो जाने में कोई कठिनाई नहीं है।

और तो मुझे अभी कुछ कहना नहीं है। रात आपकी बात सुनूंगा, फिर कुछ और कहना होगा तो आपसे कहूंगा।

एक एक कदम

जिज्ञासा साहस

और अभीप्सा

अभी-अभी आपकी तरफ आने को घर से निकला। सूर्यमुखी के फूलों को सूर्य की ओर मुंह किए हुए देखा और स्मरण आया कि मनुष्य के जीवन का दुख यही है, मनुष्य की सारी पीड़ा, सारा संताप यही है कि वह अपना सूर्य की ओर मुंह नहीं कर पाता है। हम सारे लोग जीवन भर सत्य की ओर पीठ किए हुए खड़े रहते हैं। सूर्य की ओर जो भी पीठ करके खड़ा होगा उसकी खुद की छाया उसका अंधकार बन जाती है। जिसकी पीठ सूर्य की ओर होगी उसकी खुद की छाया उसके सामने पड़ेगी और उसका मार्ग अंधकारपूर्ण हो जाएगा। और जो सूर्य की ओर मुंह कर लेता है उसकी छाया उसके लिए विलीन हो जाती है तथा उसकी आंखें और उसका रास्ता आलोकित हो जाता है।

दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक वे लोग, जो सूर्य की ओर पीठ किए रहते हैं और थोड़े-से वे लोग हैं जो सूर्य की ओर मुंह कर लेते हैं। जो लोग सूर्य की ओर पीठ किए रहते हैं उनका जीवन दुख, पीड़ा और मृत्यु के अतिरिक्त कुछ भी नहीं, उनका जीवन एक दुःस्वप्न से ज्यादा नहीं। वे नाम मात्र को ही जीते हैं। कल्पना में ही उनका सारा आनंद होता है। आशाओं में ही उनकी सारी की सारी निष्ठा होती है। उपलब्धियां उनकी करीब-करीब शून्य होती हैं। और जो लोग सूर्य की ओर या प्रभु की ओर मुंह कर लेते हैं उनके जीवन में आमूल क्रांति घटित हो जाती है। एक ही दुख है कि हमारी पीठ उस तरफ हो जहां हमारा मुंह होना चाहिए।

लेकिन, कुछ कारण हैं जिनकी वजह से जो होना चाहिए वह नहीं हो पाता और जो नहीं होना चाहिए वही होता रहता है। उन कारणों पर थोड़ा-सा विचार करना है। इन तीन दिनों में सूर्य की ओर हमारा मुंह कैसे हो जाए इस संबंध में ही विचार करेंगे। कौन-सी बातें हैं जो हमें रोके हैं, कौन-सी बातें हैं जो हमें बांधे हुए हैं, कौन-सी चित्त-अवस्थाएं हैं जो हमें अपने को ही पाने और अपने को ही उपलब्ध करने में बाधाएं बन जाती हैं, उन पर विचार करेंगे और यह भी विचार करेंगे कि उन बाधाओं को दूर कैसे किया जा सकता है।

सबसे पहली बात जो मैं आपसे कहना चाहूंगा इन तीन दिनों की चर्चा में, वह यह है कि केवल वे ही मनुष्य, केवल वे ही आत्माएं सत्य की ओर उन्मुख होने में समर्थ हो पाती हैं, जो अपने चित्त को समस्त वाद-विवादों से, सत्य के संबंध में प्रचलित समस्त पंथों और मतों से, सत्य के संबंध में बहुप्रचारित संस्थाओं, संप्रदायों और चर्चों से अपने को मुक्त कर लेती हैं। जो व्यक्ति आस्तिकता या नास्तिकता से बंध जाता है, जो व्यक्ति सत्य के संबंध में किन्हीं वादों, विवादों और पंथों में बंध जाता है, वह सत्य को उपलब्ध करने में या सत्य की ओर आंखें उठाने में असमर्थ हो जाता है।

यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात है, क्योंकि इस समय जमीन पर कोई तीन सौ पंथ हैं, कोई तीन सौ धारणाएं सत्य के संबंध में प्रचारित और प्रतिपादित की जाती हैं। कोई तीन सौ संप्रदाय हैं जो यह दावा करते हैं कि जो वे कहते हैं वही सत्य है और शेष जो कहते हैं वह सत्य नहीं है। इनके दावे, इनके विरोध, इनके वाद-विवाद सारे जगत के लोगों को अनेक-अनेक खंडों और टुकड़ों में तोड़े हुए हैं। फिर इनमें से कोई भी धारणा कोई मनुष्य स्वीकार कर ले, वह स्वीकार करते ही चित्त बंध जाता है, सीमित हो जाता है और असीम सत्य की ओर आंखें उठानी असंभव हो जाती हैं।

आप भी किसी न किसी पंथ, किसी न किसी धर्म, किसी न किसी संप्रदाय के पक्ष में खड़े होंगे। आप भी किसी मंदिर, किसी चर्च के अनुयायी होंगे। आपने भी बचपन से कुछ बातें स्वीकार कर ली होंगी जो दूसरों ने आपको सिखा दी हैं--जो समाज ने, संप्रदाय ने प्रचारित करके आपके मस्तिष्क में प्रविष्ट करा दी हैं। तो आप स्मरण रखिए, यदि आप किसी भांति किसी पक्ष में बंधे हैं तो और कुछ भी हो जाए सत्य का अनुभव आपको नहीं हो सकता।

जो व्यक्ति स्वयं को किसी धारणा से बांध लेता है वह उस सत्य को जानने में कैसे समर्थ होगा जिसकी कोई धारणा संभव नहीं है? जो व्यक्ति किसी किनारे से अपने को बांध लेता है वह कैसे समर्थ होगा उस सागर में जाने को जहां कि सब किनारे छोड़ देने पड़ते हैं? निष्पक्ष हुए बिना कोई सत्य के पक्ष में नहीं हो सकता है।

एक एक कदम

सबसे बड़ी बाधा मनुष्य की जिज्ञासा की स्वतंत्रता में उनकी यही प्रतिपादित, यही प्रचलित और परंपराओं से स्वीकृत वाद-विवाद हो जाते हैं। शास्त्र और शब्द रोक लेते हैं। विचार और विचारधाराएं बंधन बन जाती हैं। जब कि चित्त की मुक्ति चाहिए। चित्त पर कोई बंधन, कोई आरोपण नहीं होना चाहिए।

यदि आंखें किन्हीं चित्रों से भरी हों तो मैं आपको देखने में असमर्थ हो जाऊंगा। और यदि दर्पण किन्हीं तस्वीरों को पकड़ ले तो फिर दर्पण और दूसरों के प्रतिबिंब बनाने में असमर्थ हो जाएगा। जो समाज सत्य को जाने बिना, कुछ जाने बिना स्वीकार कर लेता है वह सत्य का प्रतिफलन देने में और सत्य का प्रतिबिंब देने में असमर्थ हो जाता है। चित्त का अत्यंत निर्दोष, निष्पक्ष और स्वच्छ होना जरूरी है। उसी अवस्था में आंखें उस ओर उठ सकती हैं और उसी अवस्था में चित्त की गति और चेतना की नाव आनंद-सागर की ओर जा सकती है। पहली बात है: जिज्ञासा मुक्त और स्वतंत्र हो। इस समय इस जमीन पर बहुत थोड़े लोग हैं जिनकी जिज्ञासा स्वतंत्र और मुक्त है।

मैंने एक छोटी-सी कहानी सुनी है; अत्यंत काल्पनिक कहानी है लेकिन विचार करने जैसी है। वह शायद उपयोग की हो। मैंने सुना है, एक मुसलमान सूफी फकीर ने एक रात्रि स्वप्न देखा कि वह स्वर्ग में पहुंच गया है और उसने वहां यह भी देखा कि स्वर्ग में बहुत बड़ा समारोह मनाया जा रहा है। सारे रास्ते सजे हैं। बहुत दीप जले हैं। बहुत फूल रास्ते के किनारे लगे हैं। सारे पथ और सारे महल सभी प्रकाशित हैं। उसने जाने वालों से पूछा, आज क्या है? क्या कोई समारोह है? और उसे ज्ञात हुआ कि आज भगवान का जन्मदिन है और उनकी सवारी निकलने वाली है। वह एक दरख्त के पास खड़ा हो गया।

लाखों लोगों की बहुत बड़ी शोभायात्रा निकल रही है। सामने घोड़े पर एक अत्यंत प्रतिभाशाली व्यक्ति बैठा हुआ है। उसने लोगों से पूछा, यह प्रकाशवान व्यक्ति कौन है? ज्ञात हुआ कि यह ईसा मसीह हैं और उनके पीछे उनके अनुयायी हैं। लाखों-करोड़ों उनके अनुयायी हैं। उनके निकल जाने के बाद वैसे ही दूसरे व्यक्ति की सवारी निकली, तब फिर उसने पूछा कि यह कौन हैं? उसे ज्ञात हुआ, यह हजरत मोहम्मद हैं। वैसे ही लाखों लोग उनके पीछे हैं। फिर बुद्ध हैं। फिर महावीर हैं, जरथुस्त्र हैं, कनफ्यूशियस हैं और सबके पीछे करोड़ों-करोड़ों लोग हैं। जब सारी शोभायात्रा निकल गई तो पीछे अत्यंत दीन और दरिद्र सा एक वृद्ध घोड़े पर सवार है। उसके पीछे कोई नहीं है। उसने पूछा, यह कौन है? और ज्ञात हुआ कि यह स्वयं परमात्मा हैं। घबराकर उसकी नींद खुल गई और हैरान हुआ...।

यह स्वप्न में सत्य नहीं हुआ है, यह आज सारी जमीन पर सत्य हो गया है। लोग क्राइस्ट के साथ हैं, बुद्ध के साथ हैं, राम के साथ हैं, कृष्ण के साथ हैं, परमात्मा के साथ कोई भी नहीं है। जिसे परमात्मा के साथ होना हो उसे बीच में किसी मध्यस्थ को लेने की कोई भी जरूरत नहीं। और जो परमात्मा के साथ हो, वह स्मरण रखे कि क्राइस्ट के साथ हो ही जाएगा, लेकिन जो क्राइस्ट के साथ है, अनिवार्य नहीं है कि वह परमात्मा के साथ हो जाएगा। जो परमात्मा के साथ है, वह राम, बुद्ध, कृष्ण और महावीर के साथ हो ही जाएगा, लेकिन जो उनके साथ है स्मरण रखे कि अनिवार्य नहीं कि वह परमात्मा के साथ हो जाएगा।

और फिर यह भी स्मरण रहे कि जो बुद्ध के साथ है, कृष्ण के विरोध में है; और जो क्राइस्ट के साथ है और राम के विरोध में है; और जो महावीर के साथ है तथा कनफ्यूशियस के विरोध में है, वह कभी परमात्मा के साथ नहीं हो सकता। जो परमात्मा के साथ है वह एक ही साथ क्राइस्ट, राम, बुद्ध, महावीर सबके साथ हो जाता है।

अपने मन में यह स्मरण रखने की बात है कि सत्य बहुत नहीं हो सकते, सत्य एक ही हो सकता है। और जो एक सत्य है उसके साथ अगर होना है तो सत्य के नाम से जो सत्य की अनेक धारणाएं प्रचलित हैं उनका त्याग कर देना अनिवार्य है। इसके पहले कि कोई मनुष्य धार्मिक हो सके, उसे जैन, हिंदू, मुसलमान और ईसाई होना छोड़ देना चाहिए। इसके पहले कि कोई धार्मिक हो सके, उसे धर्मों के नाम से जो पंथ प्रचलित हैं उनसे थोड़ा दूर हट जाना चाहिए। जितना उनसे दूर होगा उतना धर्म के निकट होगा और जितना आबद्ध होगा उतना धर्म से दूर हो जाएगा। यह स्वाभाविक भी है। किंतु यह इसलिए भी स्वाभाविक है कि जिस सत्य को हम दूसरों से स्वीकार कर लेते हैं वह हमारे लिए सत्य नहीं होता है।

एक एक कदम

सत्य के संबंध में कुछ बातों में से एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि वह स्वानुभूत हो तो ही सत्य होता है, दूसरे का हो तो असत्य हो जाता है। सत्य कोई भी दूसरा व्यक्ति तीसरे व्यक्ति को नहीं दे सकता। सत्य कोई ऐसी संपदा नहीं जो हस्तांतरित हो सके या ट्रांसफर हो सके। सत्य कोई ऐसी बात नहीं है कि आप उसे उधार ले सकें या चोरी कर सकें या भिक्षा में पा सकें। सत्य अकेली संपत्ति है जो स्वयं ही पानी होती है और कोई रास्ता नहीं है।

बहुत प्राचीन समय में ऐसा हुआ कि एक राज्य में एक युवक की अत्यंत वीरतापूर्ण घटनाओं से, उसके अत्यंत दुस्साहसपूर्ण कार्यों से राज्य का सम्राट बहुत प्रसन्न हो गया और उसने कहा कि राज्य का जो सबसे सम्मानित पद है वह दूंगा तथा जो सबसे सम्मानित पदवी है उसे समर्पित करूंगा, उसे भेंट करूंगा।

यह घटना राज्य के द्वारा इस तरह से सम्मानित होने की तीन सौ वर्षों से उस राज्य में नहीं घटी थी। उस युवक को प्रसन्न हो जाना चाहिए था। लेकिन लोगों ने राजा को कहा कि युवक प्रसन्न नहीं है। राजा ने उसे बुलाया और उससे कहा कि तीन सौ वर्षों से यह सम्मान किसी को नहीं मिला है; राज्य का सर्वोच्च सम्मान मैं तुम्हें दे रहा हूं, किंतु सुना कि तुम प्रसन्न नहीं हो!

उस युवक ने कहा कि मुझे धन नहीं चाहिए, मुझे पद नहीं चाहिए, मुझे यश और गौरव नहीं चाहिए, मैं कुछ और मांगता हूं; यदि राज्य उसे दे सके तो मैं कृतकृत्य हो जाऊं। राजा ने कहा कि जो कहोगे मैं दूंगा। सारे राज्य की शक्ति लग जाए तो भी मैं दूंगा।

उस युवक ने कहा कि मुझे सत्य चाहिए। राजा दो क्षण चुप रह गया और उसने कहा कि मुझे क्षमा करो, वह मेरे पास तो है नहीं जो मैं दे दूं। मुझे खुद ही सत्य का पता नहीं और मेरे सारे राज्य की सारी शक्ति और संपदा उसे खरीद नहीं सकेगी। क्योंकि अगर राज्य की शक्तियां और संपदाएं सत्य को खरीद सकतीं तो जिन्होंने राज्य, सत्य को पाने के लिए छोड़े वे नासमझ थे। क्योंकि अगर संपदा सत्य को खरीद सकती तो जिन्होंने संपदा को ठोकर मारी और सत्य को खोजा वे पागल थे। क्योंकि अगर सत्य असल में किसी से मांगने से मिल जाता तो जिन्होंने तपस्या की, साधना की वे गलती में थे।

शिक्षा मांगनी नहीं चाहिए। तो यह उसने कहा कि मुझे दिखाई नहीं देता कि सत्य कोई दे सकता है! फिर मेरे पास सत्य है भी नहीं, मैं कैसे दे सकता हूं! हां, मैंने सुना है पहाड़ में एक संन्यासी के बाबत कि उसे सत्य उपलब्ध हुआ है। मैं तुम्हारी ओर से प्रार्थना करूंगा उस संन्यासी के चरणों में सिर रख कर।

उस पहाड़ पर राजा उस युवक को साथ ले गया। उसके चरणों में सिर रख कर उसने प्रार्थना की और कहा कि जो मैंने वरदान दिया है कि जो यह मांगेगा वह मैं दूंगा, लेकिन इसने सत्य मांगा और मेरे पास तो वह है ही नहीं! मैं आपके पास आया हूं, इसे सत्य दे दें। वह संन्यासी भी वैसा ही सुन कर चुप रह गया जैसे खुद राजा रह गया था। और फिर उसने कहा, अकेला सत्य एक ऐसा तत्व है जो कोई दूसरा किसी को नहीं दे सकता है। जिस दिन सत्य दिया जा सकेगा उस दिन सत्य सत्य नहीं रह जाएगा।

सत्य दिया नहीं जाता, उसे तो पाना होता है। लेकिन हम जिन सत्य की धारणाओं को पकड़ लेते हैं वे पाई हुई नहीं हैं, दी हुई हैं। आप जो भी धर्म स्वीकार किए हैं वह आपने पाया नहीं है, स्वीकार किया है। परंपरा ने, माता-पिता ने, परिवार ने, संस्कारों ने आपको दिया है। जो भी दिया गया है वह सत्य नहीं हो सकता। अधिक लोग उस दिए गए सत्य को ही सत्य मान कर जीवन व्यतीत कर देते हैं और इससे बड़ी कोई दूसरी वंचना नहीं हो सकती।

स्मरण रखिए, जो भी आपको दिया गया है वह सत्य नहीं हो सकता। सत्य को पाने के लिए पहला चरण होगा, जो दिया गया है उसे अस्वीकार कर देना। अगर नास्तिकता दी गई है तो नास्तिकता अस्वीकार कर दें, अगर आस्तिकता दी गई है तो आस्तिकता अस्वीकार कर दें।

सोवियत रूस में बीस करोड़ लोग हैं। चालीस वर्षों से उनका देश नास्तिकता का संस्कार दे रहा है। शिक्षा में, प्रचार में, साहित्य में, वे अपने युवकों को समझा रहे हैं कि नहीं, न कोई ईश्वर है, न कोई परमात्मा है और न कोई आत्मा है; मोक्ष और धर्म सब अफीम का नशा है। चालीस वर्ष में बीस करोड़ लोगों को उन्होंने सहमत कर लिया है कि धर्म अफीम का नशा है और कोई ईश्वर नहीं है, और कोई आत्मा नहीं है। चालीस वर्ष के

प्रोपेगेंडा ने बीस करोड़ लोगों के मस्तिष्क में यह बैठा दिया है कि नास्तिकता ही सत्य है और आस्तिकता मूर्खता की बात है।

आप कहेंगे कि उनकी दृष्टि गलत है; मैं कहूंगा, आपकी दृष्टि भी गलत है। अगर चालीस वर्ष के प्रचार से नास्तिकता भीतर बैठ सकती है तो आपकी भी जो आस्तिकता है वह चार हजार वर्ष के प्रचार से आस्तिकता भी बैठ सकती है। उनकी नास्तिकता जैसी थोथी है, आपकी आस्तिकता भी उससे ज्यादा मूल्य नहीं रखती; वह भी उतनी ही थोथी है। और यही वजह है कि आप कहने को आस्तिक होंगे, धार्मिक होंगे, मंदिर में, पूजा में निष्ठा रखते होंगे, लेकिन आपके जीवन में धर्म की कोई किरण दिखाई नहीं देगी। यही वजह है कि दूसरे का दिया हुआ धर्म कभी जीवंत नहीं हो सकता। कभी वह आपके प्राणों की ऊर्जा नहीं बन सकता है। वह केवल आपकी एक बौद्धिक निष्ठा और आस्था मात्र बन कर रह जाता है।

जिज्ञासा स्वतंत्र होनी चाहिए। किससे स्वतंत्र? जीवन से, संस्कार से, संप्रदाय से। जो संस्कार से आबद्ध है, समाज और संप्रदाय से आबद्ध है, और जो संस्कारों से घिरा हुआ है, उसके पैर जमीन में गड़े हैं; वह आकाश में उड़ नहीं सकता। किनारे तो उसकी नाव की जंजीरें बंधी हैं; वह आनंद-सागर में यात्रा नहीं कर सकता।

लेकिन समाज को छोड़ कर, भाग कर संन्यासी हो जाते हैं। ऐसे सैकड़ों संन्यासियों से मैं निकट से परिचित हूं, जिन्होंने समाज छोड़ दिया, घर छोड़ दिया और परिवार छोड़ दिया। उन संन्यासियों से जब मैं मिलता हूं तो उनसे कहता हूं कि समाज छोड़ कर भाग जाने से कुछ भी नहीं होगा, क्योंकि समाज के संस्कार अगर चित्त में बैठे हैं तो समाज के भीतर में आप हैं। घर-बार और मां-बाप को छोड़ कर भाग जाने से कुछ नहीं होगा; मां-बाप ने जो विश्वास दिए थे वे आपके भीतर बैठे हैं तो आप मां-बाप के साथ ही हैं।

समाज और संस्कार को छोड़ने का अर्थ यह नहीं है कि कोई गांव को छोड़ कर जंगल में चला जाए। समाज को छोड़ने का अर्थ है कि समाज ने जो विश्वास दिए हैं उनको छोड़ देना है। बड़े साहस की बात है। जिज्ञासा इस जगत में सबसे बड़े साहस की बात है। इंक्वायरी इस जगत में सबसे बड़े साहस की बात है। अपने मां-बाप को छोड़ना उतना कठिन नहीं, समाज को छोड़ कर भाग जाना उतना कठिन नहीं, जितना समाज के द्वारा दिए गए संस्कारों को छोड़ देना कठिन है। क्यों? क्योंकि डर लगता है अकेला हो जाने का। समाज में, भीड़ में हम अकेले नहीं होते, हजारों लोग हमारे साथ हैं। उनकी भीड़ हमें विश्वास दिलाती है कि जब इतने लोग मानते हैं इस बात को तो वह बात जरूर सत्य होगी। भीड़ विश्वास दिला देती है। मूर्खतापूर्ण बातों पर भी भीड़ विश्वास दिला देती है। अगर भीड़ साथ हो तो व्यक्तियों से ऐसे काम कराए जा सकते हैं जो वे अकेले में करने को कभी राजी न होंगे।

दुनिया में जितने पाप हुए हैं, उनमें अकेले व्यक्तियों ने बड़े पाप नहीं किए हैं, भीड़ ने बड़े पाप किए हैं। भीड़ पाप इसलिए कर सकती है कि उसमें ऐसा लगता है कि जो कहा जा रहा है वह ठीक ही होगा। इतने लोग साथ हैं, इतने लोग नासमझ हो सकते हैं? अगर एक धर्म यह कहे कि हम एक मुल्क पर हमला करते हैं; क्योंकि यह धर्म का जेहाद है; क्योंकि हम धर्म का प्रचार करने जा रहे हैं; दुनिया को धर्म सिखाने जा रहे हैं। अगर एक आदमी को यह कहा जाए कि धर्म के प्रचार में हजारों लोगों की हत्या करनी होगी तो वह आदमी शायद संकोच करे, विचार करे। जब वह देखता है कि लाखों लोग साथ हैं तो अपने विचार की फिक्र छोड़ देता है कि इतने आदमी साथ हैं तो जो कहते होंगे ठीक ही कहते होंगे। इसलिए भीड़ को छोड़ने में डर लगता है। क्योंकि भीड़ को छोड़ने का अर्थ है पूरी जीवन-दृष्टि पर रिकंसीडरेशन करना होगा। इसलिए सारे लोग भीड़ से चिपके रहते हैं। हर आदमी भीड़ से चिपका रहता है।

लेकिन स्मरण रखें, जो अकेले होने को राजी नहीं है, जो भीड़ से मुक्त नहीं हो सकता, वह सत्य की बातों पर विचार करना छोड़ दे। उसे सत्य से कभी कोई संबंध नहीं होगा। सत्य का रास्ता बहुत अकेला रास्ता है। लोग सोचते हैं, अकेले का अर्थ है पहाड़ पर चले जाना। लोग सोचते हैं, अकेले का अर्थ है घर-द्वार छोड़ देना। अकेले का अर्थ है, भीड़ का साथ छोड़ देना। भीड़ से मुक्त हो जाए तो आदमी अकेला हो जाए। जिज्ञासा साहस की बात है और साहस शर्त है सत्य को पाने की। जिनमें साहस नहीं है वे जमीन पर ही रेंगते रहेंगे, आकाश में उड़ नहीं सकेंगे। जिनमें साहस नहीं है वे दूसरों के उधार सत्यों को ही ढोते रहेंगे, अपने सत्य की तलाश

नहीं कर सकेंगे। और जिसके पास अपना सत्य न हो, वह जीवित है? तो उसके जीवित होने का न कोई अर्थ है और न कोई अभिप्राय है और न ही यह उचित है कि हम उसे जीवित कहें। जब अपना सत्य होता है तो जीवन में प्रकाश हो जाता है, क्योंकि सत्य दीए की भांति सारे जीवन को आलोकित कर देता है।

पहला सूत्र है: अपनी जिज्ञासा को जीवन से मुक्त कर लें, अपनी जिज्ञासा को संस्कार से मुक्त कर लें, अपनी जिज्ञासा को निजी कर लें, व्यक्तिगत कर लें, और सत्य को अपने और परमात्मा के बीच का संबंध समझें। उसमें आपका परिवार, आपका संप्रदाय, आपका परिवार कहीं भी नहीं आता है। और यह चित्त को मुक्त करके उसकी जंजीरों को तोड़ देने की पहली धारणा है।

पहला सूत्र मैंने आपको कहा अपनी जिज्ञासा को मुक्त करने का। दूसरी बात जो जिज्ञासा से ही संबंधित है और मैंने कही है वह है साहस को उत्पन्न करने की। हम सारे लोग अत्यंत कमजोर हैं, हम सारे लोग अत्यंत दरिद्र हैं, हम सारे लोग अत्यंत शक्तिहीन हैं। और हमारी शक्तिहीनता और हमारी दरिद्रता और हमारे साहस की कमी इकट्ठी मिल कर हमारी गति को, हमारे ऊपर उठने को, हमारे ऊर्ध्वगमन को बंद कर देती है। यदि कुछ थोड़ा भी हम साहस जुटा पाएं, थोड़ा-सी शक्ति जुटा पाएं, थोड़ी हिम्मत कर सकें, तो गति संभव हो सकती है।

और यह मैं आपको कहूं कि कोई कितना भी कमजोर हो, एक कदम उठाने की सामर्थ्य सब में है। हजार मील चलने की न हो, हिमालय चढ़ने की न हो, लेकिन एक कदम उठा लेने की सामर्थ्य सबके भीतर है। अगर हम थोड़ा-सा साहस जुटाएं तो एक कदम निश्चित ही उठा सकते हैं।

दूसरी बात आपसे यह कहूं कि जो एक कदम उठा सकता है वह हिमालय चढ़ सकता है, जो एक कदम उठा सकता है वह हजारों मील चल सकता है। क्योंकि इस जगत में एक कदम से ज्यादा चलने का कोई सवाल नहीं है। एक कदम से ज्यादा कभी कोई चलता भी नहीं। हमेशा एक कदम चला जाता है। गांधीजी अपने प्रार्थना गीतों में एक भजन गाया करते थे; उस भजन की एक पंक्ति है: वन स्टेप इज़ इनफ फॉर मी--एक ही कदम मेरे लिए काफी है। परमात्मा से प्रार्थना है कि मुझे एक ही कदम की शक्ति दे दे। एक कदम मेरे लिए काफी है। एक कदम सबके लिए काफी है। क्योंकि दो कदम कोई भी एक साथ नहीं उठा सकता है। एक ही कदम उठाने की सामर्थ्य जुटा लेने की बात है। और उतनी सामर्थ्य प्रत्येक में है, जो जीवित है; और उसे जुटाने की बात है।

हमारा साहस, हमारी शक्ति, करीब-करीब बिखरी रहती है। उसे हम जुटा नहीं पाते हैं। उसे हम इकट्ठा नहीं कर पाते हैं। क्या उसे हम इकट्ठा इसलिए नहीं कर पाते कि सत्य की जिज्ञासा हमारे भीतर कभी प्यास नहीं बनती? वह एक बौद्धिक ऊहापोह रहती है? अधिक लोग हैं जो मुझसे पूछते हैं कि ईश्वर है? अधिक लोग हैं जो पूछते हैं कि आत्मा है? यदि मैं उनसे कहूं कि क्या तुम सौ कदम मेरे साथ चलने को राजी हो तब मैं उत्तर दूंगा, वे कहेंगे कि अभी मेरे पास फुर्सत नहीं है! अगर मैं उनसे कहूं कि आप तीन दिन तक मेरे पास रुकने का धैर्य रख सकोगे तो मैं उत्तर दूं, शायद वे कहेंगे कि तीन दिन हमारे पास नहीं हैं।

ईश्वर की, आत्मा की, सत्य की जो जिज्ञासा मात्र बौद्धिक ऊहापोह हो, मात्र एक बौद्धिक खुजलाहट हो, तो आप साहस को नहीं जुटा सकेंगे। साहस केवल वे ही जुटा पाते हैं जिनकी जिज्ञासा जिज्ञासा ही नहीं, अभीप्सा होती है, जिनकी जिज्ञासा प्यास होती है।

बुद्ध के पास एक युवक गया और उस युवक ने कहा, मैं सत्य के संबंध में जानने को आपके पास आया हूं। बुद्ध ने पूछा, जानने के मूल्य के बतौर क्या चुका सकोगे? सत्य तो जाना जा सकता है, लेकिन मूल्य क्या चुकाओगे? क्राइस्ट के पास भी एक युवक गया और उसने कहा कि मैं जानने को आया हूं कि क्या परमात्मा है? क्राइस्ट ने कहा कि यह तो जान सकोगे, लेकिन कीमत क्या चुकाने को राजी हो? जाओ, अपनी सारी संपत्ति को बांट कर आ जाओ, मैं तुम्हें सत्य के लिए आश्वासन देता हूं कि सत्य की ओर तुम्हें पहुंचाया जाएगा। उस युवक ने कहा कि संपत्ति को बांट आऊं? फिर विचार करना पड़ेगा! वह युवक वापस लौट गया। फिर उस गांव से ईसा कई बार गुजरे, लेकिन वह उनसे मिलने नहीं आया।

एक एक कदम

एक भारतीय साधु चीन गया था, बोधिधर्म। वह हमेशा दीवार की ओर मुंह करके बैठता था, कभी लोगों की ओर मुंह नहीं करता था। लोगों ने उससे चीन में पूछा कि यह क्या पागलपन है, आप दीवार की ओर मुंह किए बैठे हो?

बोधिधर्म ने कहा कि तुम्हारी तरफ मैं मुंह करता हूं तो तुमको मैं दीवार की तरह पाता हूं। तुमसे बात करने का कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि तुम्हारे भीतर जिस बात की प्यास नहीं है, उसकी वर्षा करने का फायदा क्या? तुम भी दीवार की भांति हो इसलिए मुंह दीवार की तरफ किए रहता हूं। कम से कम दीवार पर दया तो नहीं आती। जब कोई आदमी ऐसा आएगा जिसके भीतर प्यास हो तो मैं उसकी ओर मुंह कर दूंगा।

नौ वर्ष तक वह चीन में था। उसने दीवार की तरफ से मुंह नहीं हटाया। एक दिन हुईनेंग नाम का एक व्यक्ति आया और उसके पीछे खड़ा हो गया। हुईनेंग ने कहा कि इस तरफ मुंह कर लो! बोधिधर्म, मुंह इस तरफ कर लो! वह आदमी आ गया जिसकी प्रतीक्षा थी। बोधिधर्म ने कहा कि प्रमाण? दीवार की तरफ ही मुंह रहा और कहा कि प्रमाण? इस आदमी ने एक हाथ काट कर उसके हाथ में रख दिया। बोधिधर्म घबरा गया। और उस आदमी ने कहा कि अगर थोड़ी देर और रुके तो गर्दन से प्रमाण दे दूंगा। बोधिधर्म ने मुंह इस तरफ कर लिया। उसने कहा, ठीक है कि वह आदमी आ गया।

सत्य के लिए अगर थोड़ी-सी प्यास हो तो अदम्य साहस की जो बिखरी हुई शक्तियां हैं वे इस प्यास के केंद्र पर इकट्ठी हो जाती हैं। स्मरण रखिए, सत्य हमेशा प्यास के केंद्र पर इकट्ठा हो जाता है। जो प्यास होती है वह शक्ति बन जाती है। आपकी जो प्यास है वही आपकी शक्ति है।

शीरी का आपने नाम सुना होगा, फरहाद और शीरी का। शीरी ने फरहाद से पूछा कि तुम मुझे प्रेम करते हो? फरहाद ने कहा कि अगर कहूंगा तो क्या विश्वास होगा? कैसे विश्वास दिलाऊं? शीरी ने कहा कि गांव के पीछे जो पहाड़ है उसको खोद कर अलग कर दो। फरहाद ने फावड़ा उठाया और पहाड़ पर चला गया। कहा जाता है कि उसने सूरज उगने से पहले पहाड़ को खोद कर फेंक दिया।

यह बात तो काल्पनिक ही कही जा सकती है, सूरज उगने के पहले उसने पहाड़ को खोद कर फेंक दिया। लेकिन यह बात काल्पनिक हो तो भी सच है। जिनके भीतर प्यास हो और प्रेम हो, उनके लिए और भी कम समय में पहाड़ खोद कर फेंका जा सकता है। असल में पहाड़ है ही इसलिए क्योंकि हमारे अंदर प्यास नहीं है। प्यास हो तो पहाड़ मिट जाता है। रास्ते पर जो भी अड़चनें हैं वे इसलिए हैं कि हमारे भीतर प्यास नहीं है। हमारे भीतर प्यास की जलती अग्नि हो तो रास्ता सीधा और राजपथ हो जाता है। सारी कठिनाइयां दूर हट जाती हैं, क्योंकि कठिनाइयों का अनुपात वही होता है जो हमारी कमजोरी का अनुपात है। जितनी शक्ति इकट्ठी हो उतनी कमजोरी टूट जाती है और मार्ग की बाधाएं नष्ट हो जाती हैं। जिनकी केवल जिज्ञासा है वे केवल ज्यादा से ज्यादा तत्व-चर्चा को उपलब्ध हो सकते हैं, तत्व-साक्षात को नहीं।

पूरब और पश्चिम का यही फर्क है। पश्चिम ने भी दो-ढाई हजार वर्षों में साहित्य का अनुसंधान किया है, लेकिन वे फिलासफी के ऊपर नहीं जा सके, वे रियलाइजेशन पर नहीं जा सके। उन्होंने तत्व-चिंतन तो किया, लेकिन वे केवल जिज्ञासाएं मात्र थीं, अभीप्साएं नहीं थीं। वे कोई ऐसी बातें नहीं थीं जिन पर वे अपने प्राण को न्योछावर कर सकें और समर्पित कर सकें। वे कोई ऐसी तलाश और खोजें नहीं थीं कि वहां वे अपने जीवन के मूल्य चुकाने को राजी हों। और जो मनुष्य सत्य के ऊपर किसी और चीज को रखता है वह यह समझ ले, अभी उसकी प्यास नहीं जगी और समय नहीं आया।

आप अपने भीतर निर्णय करें और विचार करें कि क्या परमात्मा को या सत्य को, जो भी है जगत में उसको खोजने के लिए, जो भी भीतर है उसको खोजने के लिए प्यास का जागरण शुरू हो गया है? यदि जागरण शुरू नहीं हुआ तो उसके पहले खोज में लग जाना व्यर्थ होगा। तब बेहतर है कि पहले प्यास को सजग करने की चेष्टा करें और फिर तलाश में लगें। बहुत-से लोग बिना प्यासे हुए खोजने चले जाते हैं। वे जीवन भर दौड़ते हैं, उन्हें कुछ मिलता नहीं है।

मुझे संन्यासी मिलते हैं, वे कहते हैं कि मुझे चालीस वर्ष हुए, हम खोज कर रहे हैं किंतु कुछ मिला नहीं। मैं उनसे पूछता हूं कि पहले यह खोजो कि खोजने के पहले प्यास पैदा हो गई कि नहीं? अगर प्यास पैदा नहीं हुई

तो खोज व्यर्थ है, क्योंकि पानी की पहचान ही नहीं हो सकेगी जब तक प्यास नहीं होगी। मेरे सामने नदी बहती रहे, झरने बहते रहें, और मेरे भीतर प्यास न हो तो पानी को पहचानूंगा कैसे?

पानी की पहचान पानी में नहीं, मेरी प्यास में है। यदि मेरे भीतर प्यास है तो पानी पहचान लिया जाएगा। और मेरे भीतर प्यास नहीं है तो पानी पहचाना नहीं जा सकेगा। सत्य तो निरंतर मौजूद है। मेरे भीतर प्यास है तो उसी वक्त पहचाना जा सकेगा। और मेरे भीतर प्यास न हो तो कैसे पहचानूंगा?

सत्य को शास्त्रों से नहीं, प्यास से पहचाना जाता है। तो इसके पहले कि प्यास हो... कैसी प्यास हो? जिज्ञासा हो अकेली? जिज्ञासा काफी नहीं है। जिज्ञासा अभीप्सा बने--प्राणों की प्यास बन जाए। और प्राणों की प्यास कैसे बनेगी? कुछ चीजों को देखने से प्राणों की प्यास बन जाएगी। आंख खोलें और चारों तरफ देखें।

वहां दूर इटली में एक साधु हुआ है, और जब वह मर रहा था तो लोगों ने उससे पूछा कि तुम साधु कैसे हुए? उसने कहा कि मैंने आंख खोल कर देखा तो साधु होने के सिवाय कोई उपाय नहीं रह गया।

पूछा, आंख खोल कर देखा? हम भी आंख खोल कर देख रहे हैं!

उसने कहा, मैंने बहुत कम लोग देखे जो आंख खोल कर देख रहे हों, अधिक लोग आंख बंद किए देख रहे हैं। मैं भी आपसे कहता हूं कि अधिक लोग आंख बंद करके देख रहे हैं। अगर आंख खोल कर देखेंगे तो इतनी प्यास पैदा होगी उसको जानने के लिए कि जो इस सबके पीछे छिपा है, जिसका कोई हिसाब नहीं, सारे प्राण ही प्यास की लपटों में बदल जाएंगे।

आंख खोल कर देखने का अर्थ है जो दिखाई पड़ा है, सामान्यतः जो दिखाई पड़ रहा है, वही नहीं, बल्कि सामान्यतः जो दिखाई पड़ रहा है उसके पीछे जो राज छिपे हुए हैं, वह देखना चाहिए।

बुद्ध का जन्म हुआ तो ज्योतिषियों ने बुद्ध के पिता से कहा कि यह बच्चा बड़ा होकर या तो चक्रवर्ती या संन्यासी हो जाएगा। सारे घर में रुदन हो गया, सारे घर में घबराहट फैल गई। एक ही पुत्र हुआ था, बहुत प्रतीक्षा के बाद हुआ था, और वह भी संन्यासी हो जाएगा! तो बुद्ध के पिता ने पूछा, क्या रास्ता है कि उसे संन्यासी होने से रोक सकूं? क्या मार्ग है कि यह संन्यासी होने से रुक जाए? हम अपनी सारी शक्ति लगा देंगे। ज्योतिषियों ने और विचारशील लोगों ने कहा, एक ही मार्ग है, इसकी आंखें न खुलने पाएं।

अजीब उन्होंने बात कही: इसकी आंखें न खुलने पाएं, फिर आंखें खुलीं तो कोई भी आदमी संन्यासी हुए बिना नहीं रह सकता। आंख न खुलने पाए, यह कैसे होगा? उन्होंने मार्ग बताया, वैसी व्यवस्था की गई। व्यवस्था तीन बातों की की गई: बुद्ध को जगत में किसी तरह का दुख दिखाई न पड़े; बुद्ध को जगत में किसी भांति की जरा, मरण, मृत्यु दिखाई न पड़े; बुद्ध को जगत में विचार करने का मौका न आने पाए।

ये तीन व्यवस्थाएं की गईं। ये तीन व्यवस्थाएं आप भी किए हुए होंगे। हर आदमी अपने लिए किए हुए है। दुख दिखाई न पड़े, मृत्यु दिखाई न पड़े, और विचार का मौका न आने पाए। विचारशील लोगों ने कहा, ऐसा करें, इतना भोग में लगा दें, इतना व्यस्त कर दें कि विचार करने का मौका न आ पाए। जो जितना भोग में व्यस्त होगा, विचार करने का मौका कम पैदा होता है। जो जितना निरंतर सुबह से शाम तक लगा रहेगा उसे विचार करने का मौका कम पैदा होता है। भोग के बीच अंतराल हो तो विचार पैदा होता है।

तो उनके पिता ने ऐसी व्यवस्था की कि संगीत में, शराब में, स्त्रियों में, वैभव में सुबह से शाम रात आ जाए, उसे मौका न मिले सोचने का। ऐसे मकानों में उन्हें रखा गया कि कोई कुम्हलाया हुआ फूल बुद्ध नहीं देख पाएं। कुम्हलाए फूल रात में अलग कर दिए जाते थे। कोई कुम्हलाया हुआ पौधा न देख पाएं। वह जहां रहते थे वहां कोई वृद्ध व्यक्ति न जा पाए, कोई बीमार न जा पाए, ऐसी व्यवस्था थी। किसी तरह की रुग्णता का उन्हें पता न चले। जीवन में सुख ही सुख है, फूल ही फूल हैं, कोई कांटा नहीं है।

बुद्ध युवा हुए तब तक उनकी आंखें बंद रहीं।

हम में से बहुत-से बूढे हो जाते हैं तब तक आंखें बंद रहती हैं।

एक दिन वह गांव से निकले एक महोत्सव में, युवक महोत्सव में भाग लेने को। रास्ते में पहली दफा कहा जाता है कि उन्होंने एक वृद्ध को देखा। बुद्ध ने अपने सारथी से पूछा, इस व्यक्ति को क्या हो गया है?

जिसने अब तक कोई बूढ़ा न देखा हो, स्वाभाविक था वह पूछे कि इस व्यक्ति को क्या हो गया है। अगर मुझसे बुद्ध के पिता ने पूछा होता कि मैं क्या करूं तो मैं कहता कि बचपन से जो भी दुख हैं, पीड़ाएं हैं, इसे देखने दें। यह उनका आदी हो जाएगा। जिन्होंने बुद्ध के पिता को सलाह दी वह सलाह गलत हो गई। चूंकि युवा होने तक कोई बूढ़ा नहीं देखा था। इसलिए जब एकदम से बूढ़ा देखा तो आंख खुल गई। वे आदी नहीं थे, वह हैबिट न हो पाई थी देखने की। और जो उनके पिता ने समझा था रुकने का कारण, वही आज जाने का कारण हो गया।

देखा बूढ़े को तो बुद्ध ने पूछा, यह क्या हो गया? सारथी ने कहा, यह आदमी बूढ़ा हो गया है। बुद्ध ने पूछा, क्या हर आदमी बूढ़ा हो जाता है? सारथी ने कहा, हर आदमी बूढ़ा हो जाता है। बुद्ध ने पूछा कि क्या मैं भी? सारथी ने कहा, कोई भी अपवाद नहीं है। बुद्ध ने कहा, रथ को वापस लौटा लो, युवक महोत्सव में जाने का क्या प्रयोजन?

यह देखना आंख खोल कर देखना है।

बुद्ध ने तीन प्रश्न पूछेः इस आदमी को क्या हुआ है? क्या हर आदमी को ऐसा हो जाएगा? क्या मुझे भी ऐसा हो जाएगा? सारथी ने कहा, कोई भी अपवाद नहीं है, आप भी बूढ़े हो जाएंगे। बुद्ध ने कहा, मैं बूढ़ा हो गया, रथ वापस लौटा लो।

और मार्ग में उन्होंने एक मृतक की लाश देखी। लोग उसके शव को लिए जाते हैं। और बुद्ध ने पूछा, यह क्या हुआ? क्या यह हर आदमी को होगा? क्या यह मुझे भी होगा? सारथी ने कहा, मैं कैसे कहूं? लेकिन जो जन्मता है उसको मरना होता है।

रथ वापस करो, मैं मर गया।

यह देखना है। यह आंख खोल कर देखना है। अगर कोई आंख खोल कर देखे तो हर मरते हुए आदमी में अपनी मृत्यु को देखेगा। अगर कोई आंख बंद करके देखेगा तो यह देखेगा कि वह आदमी मर रहा है, मैं मरूंगा यह उसे खयाल नहीं आएगा। रोज हम मरते हुए देखते हैं, लेकिन आंख बंद है कि लोग तो मरते हैं लेकिन अपनी मौत दिखाई नहीं पड़ती।

जीवन में आंख खोल कर देखने की बात है। जो भी आप देख रहे हैं, विचार कर लें, समझ लें जो कि चारों ओर हो रहा है, आप उसके हिस्से हैं, और वह आपके साथ होगा।

अगर हम आंख खोल कर देख लें! हम कहते हैं कि महावीर के पास राज्य था, बुद्ध के पास राज्य था, वे अपने राज्य को ठोकर मार कर चले गए, लेकिन हम राज्य की खोज में लगे हैं। अगर हम देख सकें कि जिनके पास धन है, आंख खोल कर देख सकें कि उनके पास आनंद है? लेकिन हम धन की खोज में लगे हैं। जिसके पास पद है, प्रतिष्ठा है, अगर हम आंख खोल कर देख सकें तो पूछना पड़ेगा कि उनके भीतर शांति है? लेकिन हम भी पद और प्रतिष्ठा की खोज में लगे हैं। हम अंधे ही हो सकते हैं, क्योंकि जिन गड्ढों में दूसरे गिरे हैं हम भी उन गड्ढों को खोज रहे हैं।

तो हमारे पास आंखें हैं यह नहीं माना जा सकता। आंख खोल कर देखने का अर्थ है जो चारों तरफ हो रहा है उसके प्रति सजग हो जाएं और अपने प्रति भी विचार कर लें कि जो चारों तरफ हो रहा है वह मेरे साथ भी होगा। निश्चित है उसका होना। अगर यह बोध दिख जाए, अगर यह दुख, यह पीड़ा, यह एक्झिस्टेंस, यह अस्तित्व की सारी की सारी संताप-स्थिति अनुभव हो जाए तो प्राण एकदम छटपटाने लगेंगे और यह खयाल होगा कि क्या अगर यही जीवन है तो जीवन व्यर्थ है या फिर कोई और जीवन हो सकता है? उसकी मैं खोज करूं।

जब तक मुझे दिखाई न पड़े कि इस भवन में आग लगी है, तब तक मैं कैसे इस भवन के बाहर निकलने के लिए उत्कंठित हो सकता हूं! दूसरे मुझसे कहते हैं कि भवन में आग लगी है तो उनसे मैं कहूंगा कि ठहरिए, अभी चलता हूं। या उनसे कहूंगा, यह देखूंगा कि मौका लगेगा तो बाहर आ जाऊंगा। या उनसे मैं कहूंगा कि विचार से मैं सहमत हो गया हूं कि मकान में आग लगी है, लेकिन अभी जरा उलझन है इसलिए बाहर आने

में असमर्थ हूं। दूसरे अगर मुझसे कहें तो। लेकिन अगर मुझे दिखाई पड़े, अगर मुझे दिखाई पड़े कि इस भवन में आग लगी है तो फिर इस भवन में मेरा एक भी क्षण रुकना असंभव है।

आंख खोल कर देखें तो सारे जगत में, सारे संसार में आग लगी हुई दिखाई पड़ रही है। हर आदमी अपनी कब्र पर बैठा हुआ है, हर आदमी अपनी चिता पर चढ़ा हुआ है। और जो दूसरे को चिता पर चढ़ा हुआ देख रहा है, वह गलत देख रहा है। हर आदमी चिता पर चढ़ा हुआ है। हम सब चिता पर बैठे हुए हैं और उसकी आग धीरे-धीरे डुबाती जाती है; और एक दिन भस्मीभूत कर देगी; और एक दिन जला कर राख कर देगी।

जन्म के दिन से ही हमारा मरण शुरू हो जाता है। उस दिन से ही हम चिता पर रख दिए गए। जिस दिन हम घर के पालने में रख दिए गए उस दिन हम चिता पर रख दिए गए। जिस दिन जमीन पर उतरे, उसी दिन हम कब्र पर भी उतर गए हैं। और हर आदमी जल रहा है। उसे बोध नहीं कि वह सारी दुनिया को देख रहा है लेकिन अपने नीचे नहीं देख रहा है कि वहां क्या हो रहा है।

प्रतिक्षण आप मौत में उतरते जा रहे हैं। जिसे आप जीवन कहते हैं वह रोज-रोज कब्र में उतर जाने के सिवाय और कुछ भी नहीं है। वह ग्रेज्युअल डेथ है; रोज-रोज मरते जाना है। यह समय-समय हम मर रहे हैं। इसे देखते हैं और तब एक घबराहट जीवन को पाने की पैदा होगी। अगर इसी को जीवन समझ लिया तो चूक जाएंगे उस जीवन से जो मिल सकता था। अगर इसी को सत्य समझ लिया तो चूक जाएंगे उस सत्य को जो हो सकता था।

अगर यह मृत्यु दिख जाए जिसे हम जीवन समझते हैं और जिसे हम सत्य और वास्तविक समझते हैं, यह अवास्तविक और असत्य दिख जाए, तो सारे प्राण छटपटाते उसमें लग जाएं--किसी दूर, किसी अनंत छिपे हुए रहस्य की खोज में। और जब जिज्ञासा न होगी, तब प्यास होगी। तब अभीप्सा होगी और वैसी अभीप्सा ही केवल तैयार करती है व्यक्ति को--उसके साहस को; उसकी शक्ति को जुटा देती है।

मैंने कुछ थोड़ी-सी बातें कहीं, बिलकुल प्राथमिक भूमिका है। जिज्ञासा मुक्त हो, वाद-विवाद, विचार, पंथों से अलग हो, निष्पक्ष हो। कोई जरूरत नहीं मानने की कि ईश्वर है या नहीं, इतना ही काफी है कि क्या है उसे मैं जानना चाहता हूं। जानने की प्यास, जानने की जिज्ञासा काफी है, मानने की कोई जरूरत नहीं। क्योंकि मानना दूसरे से आता है, जानना स्वयं से आता है। जो भी हम मानते हैं वह दूसरों से मानते हैं और जो भी हम जानते हैं वह स्वयं जानते हैं। धर्म मानना नहीं है, धर्म जानना है। धर्म विश्वास नहीं है, धर्म विवेक है। धर्म दूसरों के द्वारा गृहीत नहीं है, धर्म स्वयं के द्वारा अभीप्सित है।

पहली बात मैंने कही: समस्त धारणाओं, मतों, पंथों--हिंदू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन--इनसे मुक्त कर लो। ये घेरे काफी नहीं हैं। ये दीवारें तोड़ दो। कितने सुख का दिन होगा अगर जगत में ये दीवारें गिर जाएं और केवल सत्य की जिज्ञासा रह जाए। और दूसरी बात मैंने कही, ऐसी जिज्ञासा के लिए साहस जुटाने की जरूरत है, क्योंकि बिना साहस के अकेले होने में डर लगेगा। भीड़ से, समाज से, संस्कार से मुक्त होने में डर लगेगा। अकेले होने के लिए साहस की जरूरत है। लेकिन मैंने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति की यह शक्ति है कि वह एक कदम चलने का साहस जुटा सकता है। लेकिन वह कदम भी तभी उठाने का विचार कर रहा होगा जब जिज्ञासा मात्र बौद्धिक खोजबीन न हो वरन प्राणों की प्यास और अभीप्सा बन जाए। और अभीप्सा अभीप्सा तब बनेगी जब आंखें खुली हों।

आंखें खोलें और देखें, पूरी जिंदगी आपके चारों तरफ प्रकृति से प्रतिक्षण ईश्वर का आह्वान और संदेशा आ रहा है। हर घड़ी हर गिरते हुए पत्ते से आपकी मौत की खबर है। हर डूबते हुए सूरज से आपके डूबने की खबर है। हर मरते हुए आदमी में आपकी मृत्यु का आह्वान और संदेश है। हर तरफ जो दुख है वह आपका दुख है। सब तरफ जो संताप के तीर बिछे हैं वे आपके हैं। इस पीड़ा को आंख खोल कर अनुभव करें तो प्यास पैदा होगी। इस जीवन की व्यर्थता को अनुभव करें तो सार्थक जीवन को पाने का अनुभव-बोध पैदा होगा। इस जीवन को मृत समझें तो जो अमृत जीवन है उसकी तरफ आंखें अनायास उठनी शुरू हो जाएंगी।

जिज्ञासा, साहस और अभीप्सा, ये तीन सूत्र हैं। आज स्मरण रखिए और इसके बाद की भूमिकाओं के सूत्रों पर हम रोज विचार करेंगे। रात्रि के जो आपके प्रश्न होंगे उन पर हम चर्चा कर लेंगे। और यह तो सब बातचीत है

एक एक कदम

उसी भांति जैसे एक कांटा लग जाए तो दूसरे कांटे से हम निकाल देते हैं लेकिन दूसरे कांटे को उसी जगह नहीं रख देते हैं। मैं जो बातें कर रहा हूं वे आपके मन में रखने के लिए नहीं हैं। नहीं तो मैं आपका दुश्मन हो गया। क्योंकि मैंने कुछ विचार निकाले और दूसरे डाल दिए। उससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। मेरी बातें उतनी ही व्यर्थ हैं जितनी वे बातें जो आपको दूसरों ने दी हैं। इसलिए इनको उनकी जगह नहीं रख लेना।

हम कोई पंथ और पक्ष खड़ा नहीं करना चाहते कि मैं आपको सारे पंथों से मुक्त कर लूं और एक पंथ में खड़ा कर दूं। वह तो मैं आपका दुश्मन हो जाऊंगा। वह तो वही बात हो गई। इससे क्या फर्क पड़ता है कि पंथ किसका है और विश्वास किसके हैं। मेरी बातों का इससे ज्यादा कोई भी मूल्य नहीं है कि जो कांटे लगे हैं आपको वे निकाल दिए जाएं दूसरे कांटे से। लेकिन दूसरा कांटा उतना ही कांटा है जितना पहला लगा हुआ है। और दोनों फेंक देने योग्य हैं। दूसरा कांटा रख लेने की जरूरत नहीं।

इसलिए मेरी बातों को कहीं रख नहीं लेना है। यह सब बातचीत है। अगर पहले से घुसी हुई बातचीत को निकाल देने की सामर्थ्य हो जाए तो ठीक, असली बात साधना है। वह हम रात्रि को आपके प्रश्नों के बाद उस पर थोड़े-से प्रयोग करेंगे। लाख विचार उतने काम के नहीं हैं जितना एक छोटा-सा अणुमात्र साधना का काम का है। लाख चिंतन अर्थ का नहीं है जितना प्यास से भर कर सत्य और परमात्मा की ओर आंखें उठा कर थोड़ी देर चुप हो जाने का मूल्य है। वह चुप होकर कैसे हम परमात्मा की ओर आंखें उठा सकते हैं--वे जो सूर्यमुखी के फूल देखे, वे जैसे सूरज की ओर मुंह उठाए खड़े हैं, वैसे हम कैसे आलोक और प्रकाश की ओर मुंह उठा सकते हैं--उसको तो हम रात में ध्यान के प्रयोग में तीन दिन करेंगे। और बाकी तीन दिन आपके भीतर लगे हुए कांटे को दूसरे कांटे से निकालने की मैं चेष्टा करूंगा। फिर भी कोई-कोई कांटे लगे रह जाएं तो रात को शंका-समाधान में वह आप मुझसे बात कर सकते हैं।

अंत में परमात्मा से यही प्रार्थना करता हूं कि जो भी इस जमीन पर हैं उन सबको--उन सबों को उसकी अनुभूति उपलब्ध हो। जो भी इस जमीन पर हैं उनके हृदय उसके आलोक से भर जाएं। जो भी सत्तावान हैं, उसके प्रेम को, उसके आनंद को अनुभव कर सकें। उस प्रेम और उस आनंद के अनुभव में स्वयं के भी परमात्मा होने का अनुभव छिपा हुआ है। और जब तक यह अनुभव न हो जाए कि मैं ही परमात्मा हूं तब तक आप जीवित नहीं हैं, तब तक आप मृत प्रकृति के हिस्से हैं। और जिस दिन यह अनुभव आपके भीतर जागता है और आपके अणु-अणु में और श्वास-श्वास में व्याप्त हो जाता है कि मैं ही परमात्मा हूं, उस दिन जो आप जानते हैं उसे शब्दों में कहने का कोई उपाय नहीं।

लेकिन सारे जगत की, सारे प्राणों की जानी-अनजानी आकांक्षा उसी सत्य को जानने की है--उसी परिपूर्ण को, उसी अनंत को, उसी अनादि को, उसी सनातन को, जो सबके भीतर छिपा है। जो फिर से प्रकट नहीं है। जिस दिन प्रकट हो जाएगा उस दिन आनंद और संगीत से, उस दिन सारा जीवन, श्वास-श्वास, आलोकित सौंदर्य से भर जाता है। उस सौंदर्य का सब में अनुभव हो सके, यह प्रार्थना करता हूं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना है, उसके लिए अनुगृहीत हूं। अंत में सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा के लिए मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

एक एक कदम

क्या
भारत धार्मिक
है?

एक बहुत पुराने नगर में उतना ही पुराना एक चर्च था। वह चर्च इतना पुराना था कि उस चर्च में भीतर जाने में भी प्रार्थना करने वाले भयभीत होते थे। उसके किसी भी क्षण गिर पड़ने की संभावना थी। आकाश में बादल गरजते थे, तो चर्च के अस्थिपंजर कंप जाते थे। हवाएं चलती थीं, तो लगता था, चर्च अब गिरा, अब गिरा! ऐसे चर्च में कौन प्रवेश करता, कौन प्रार्थना करता? धीरे-धीरे उपासक आने बंद हो गए। चर्च के संरक्षकों ने कभी दीवार का पलस्तर बदला, कभी खिड़की बदली, कभी द्वार रंगे। लेकिन न द्वार रंगने से, न पलस्तर बदलने से, न कभी यहां ठीक कर देने से, वहां ठीक कर देने से वह चर्च इस योग्य हुआ कि उसे जीवित माना जा सके। वह मुर्दा ही बना रहा। लेकिन जब सारे उपासक आने बंद हो गए, तब चर्च के संरक्षकों को भी सोचना पड़ा, क्या करें?

और उन्होंने एक दिन कमेटी बुलाई। वह कमेटी भी चर्च के बाहर ही मिली, भीतर जाने की उनकी भी हिम्मत न थी। वह किसी भी क्षण गिर सकता था। रास्ता चलते लोग भी तेजी से निकल जाते थे।

संरक्षकों ने बाहर बैठ कर चार प्रस्ताव स्वीकृत किए। उन्होंने पहला प्रस्ताव स्वीकृत किया बहुत दुख से कि पुराने चर्च को गिराना पड़ेगा। और हम सर्वसम्मति से तय करते हैं कि पुराना चर्च गिरा दिया जाए। लेकिन तत्क्षण उन्होंने दूसरा प्रस्ताव भी पास किया कि पुराना चर्च हम गिरा रहे हैं, इसलिए नहीं कि चर्च को गिरा दें, बल्कि इसलिए कि नया चर्च बनाना है। दूसरा प्रस्ताव किया कि एक नया चर्च शीघ्र से शीघ्र बनाया जाए। और तीसरा प्रस्ताव उन्होंने किया कि नए चर्च में पुराने चर्च की ईंटें लगाई जाएं, पुराने चर्च के ही दरवाजे लगाए जाएं, पुराने चर्च की ही शक्ल में नया चर्च बनाया जाए। पुराने चर्च के जो आधार हैं, बुनियादें हैं, उन्हीं पर नए चर्च को खड़ा किया जाए--ठीक पुरानी जगह पर, ठीक पुराना, ठीक पुराने सामान से ही वह निर्मित हो। इसे भी उन्होंने सर्वसम्मति से स्वीकृत किया। और फिर चौथा प्रस्ताव उन्होंने स्वीकृत किया, वह भी सर्वसम्मति से, और वह यह कि जब तक नया चर्च न बन जाए, तब तक पुराना न गिराया जाए!

वह पुराना चर्च अब भी खड़ा है। वह पुराना चर्च कभी भी नहीं गिरेगा। लेकिन उसमें कोई उपासक अब नहीं जाते हैं। उस रास्ते से भी अब कोई नहीं निकलता है। उस गांव के लोग धीरे-धीरे भूल ही गए हैं कि कोई चर्च भी है।

भारत के धर्म की अवस्था भी ऐसी ही है। वह इतना पुराना हो चुका, वह इतना जराजीर्ण, वह इतना मृत कि अब उसके आस-पास कोई भी नहीं जाता है। उस मरे हुए धर्म से अब किसी का कोई संबंध नहीं रह गया है। लेकिन, वे जो धर्म के पुरोहित हैं, वे जो धर्म के संरक्षक हैं, वे उस पुराने को बदलने के लिए तैयार नहीं हैं। वे निरंतर यही दोहराए चले जाते हैं कि वह पुराना ही सत्य है, वह पुराना ही जीवित है, उसे बदलने की कोई भी जरूरत नहीं है।

मैं आज की सुबह इसी संबंध में कुछ बातें आपसे करना चाहता हूं।

क्या भारत धार्मिक है?

भारत इसी अर्थों में धार्मिक है, जिस अर्थों में वह नगर धार्मिक था, क्योंकि उस नगर में एक चर्च था। भारत धार्मिक है, क्योंकि भारत में बहुत मंदिर हैं, मस्जिद हैं, गुरुद्वारे हैं। भारत इसी अर्थों में धार्मिक है जिस अर्थों में उस गांव के लोग धार्मिक थे। इसलिए नहीं कि वे मंदिर जाते थे, बल्कि वे मंदिर जाने से बचने की कोशिश करते थे। भारत इसी अर्थों में धार्मिक है कि हर आदमी धर्म से बचने की चेष्टा कर रहा है।

लेकिन उस गांव के लोग थोड़े ईमानदार रहे होंगे। वे मंदिर नहीं जाते थे, तो उन्होंने यह मान लिया था कि हम नहीं जाते हैं। उन्होंने यह मान लिया था कि मंदिर पुराना है और उसके नीचे जान गंवाई जा सकती है, जीवन नहीं पाया जा सकता। लेकिन भारत के लोग इतने भी ईमानदार नहीं हैं कि वे यह मान लें कि धर्म पुराना हो गया है, जान गंवाई जा सकती है उससे, लेकिन जीवन नहीं पाया जा सकता।

हम थोड़े ज्यादा बेईमान हैं। हम धर्म से सारा संबंध भी तोड़ लिए हैं, लेकिन हम ऊपर से यह भी दिखाने की चेष्टा करते हैं कि हम धर्म से संबंधित हैं। हमारा कोई आंतरिक नाता धर्म से नहीं रह गया है। हमारे कोई प्राणों के अंतर्संबंध धर्म से नहीं हैं। लेकिन हम ऊपर से दिखावा जारी रखते हैं। हम ऊपर से यह प्रदर्शन जारी रखते हैं कि हम धर्म से संबंधित हैं, हम धार्मिक हैं।

यह और भी खतरनाक बात है। यह अधर्म को छिपा लेने की सबसे आसान और कारगर तरकीब है। अगर यह भी स्पष्ट हो जाए कि हम अधार्मिक हो गए हैं, तो शायद इस अधर्म को बदलने के लिए कुछ किया जा सके। लेकिन हम अपने को यह धोखा दे रहे हैं, एक आत्मवंचना में हम जी रहे हैं कि हम धार्मिक हैं।

और यह आत्मवंचना रोज महंगी पड़ती जा रही है। किसी न किसी को यह दुखद सत्य कहना पड़ेगा कि धर्म से हमारा कोई भी संबंध नहीं है। हम धार्मिक भी नहीं हैं और हम इतने हिम्मत के लोग भी नहीं हैं कि हम कह दें कि हम धार्मिक नहीं हैं। हम धार्मिक भी नहीं हैं और अधार्मिक होने की घोषणा कर सकें, इतना साहस भी हमारे भीतर नहीं है।

तो हम त्रिशंकु की भांति बीच में लटके रह गए हैं। न हमारा धर्म से कोई संबंध है, न हमारा विज्ञान से कोई संबंध है। न हमारा अध्यात्म से कोई संबंध है, न हमारा भौतिकवाद से कोई संबंध है। हम दोनों के बीच में लटके हुए रह गए हैं। हमारी कोई स्थिति नहीं है। हम कहां हैं, यह कहना मुश्किल है। क्योंकि हमने यह बात जानने की स्पष्ट कोशिश नहीं की है कि हम क्या हैं और कहां हैं। हम कुछ धोखों को बार-बार दोहराए चले जाते हैं और उन धोखों को दोहराने के लिए हमने तरकीबें ईजाद कर ली हैं। हमने डिवाइसेज बना ली हैं और उन तरकीबों के आधार पर हम विश्वास दिला लेते हैं कि हम धार्मिक हैं।

एक आदमी रोज सुबह मंदिर हो आता है और वह सोचता है कि मैं धर्म के भीतर जाकर वापस लौट आया हूं। मंदिर जाने से धर्म तक जाने का कोई भी संबंध नहीं है। मंदिर तक जाना एक बिलकुल भौतिक घटना है, शारीरिक घटना है। धर्म तक जाना एक आत्मिक घटना है। मंदिर तक जाना एक भौतिक यात्रा है। मंदिर तक जाना एक आध्यात्मिक यात्रा नहीं है। सच तो यह है कि जिनकी आध्यात्मिक यात्रा शुरू हो जाती है, उन्हें सारी पृथ्वी मंदिर दिखाई पड़ने लगती है। फिर उन्हें मंदिर को खोजना बहुत मुश्किल हो जाता है कि वह कहां है।

नानक ठहरे थे मदीना में और सो गए थे रात मंदिर की तरफ पैर करके। पुजारियों ने आकर कहा था कि हटा लो ये पैर अपने! तुम पागल हो, या कि नास्तिक हो, या कि अधार्मिक हो? तुम पवित्र मंदिर की तरफ पैर किए हुए हो? नानक ने कहा था, मैं खुद बहुत चिंता में हूं कि अपने पैर कहां करूं! तुम मेरे पैर वहां कर दो जहां परमात्मा न हो, जहां उसका पवित्र मंदिर न हो। वे पुजारी ठगे हुए खड़े रह गए। कोई रास्ता न था कि नानक के पैर कहां करें, क्योंकि जहां भी था, अगर था तो परमात्मा था। जहां भी जीवन है, वहां प्रभु का मंदिर है।

तो जिन्हें धर्म की यात्रा का थोड़ा-सा भी अनुभव हो जाता है, उन्हें तो सारा जगत मंदिर दिखाई पड़ने लगता है। लेकिन जिन्हें उस यात्रा से कोई भी संबंध नहीं है, वे दस कदम चल कर जमीन पर और एक मकान तक पहुंच जाते हैं और लौट आते हैं, और सोचते हैं कि धार्मिक हो गए हैं। ऐसे हम धार्मिक होने का धोखा देते हैं अपने को।

एक आदमी रोज सुबह बैठ कर भगवान का नाम ले लेता है। निश्चित ही, बहुत जल्दी में उसे नाम लेने पड़ते हैं, क्योंकि और बहुत काम हैं। और भगवान के लायक फुर्सत किसी के पास नहीं है। बहुत जल्दी में, एक जरूरी काम है, वह भगवान के नाम लेकर निपटा देता है और चल पड़ता है। और कभी उसने अपने से नहीं पूछा कि जिस भगवान को मैं जानता नहीं, उस भगवान के नाम का मुझे कैसे पता है? मैं क्या दोहरा रहा हूं? मैं भगवान का नाम दोहरा रहा हूं?

भगवान का स्मरण हो सकता है, भगवान का नाम स्मरण नहीं हो सकता, क्योंकि भगवान का कोई नाम नहीं है। भगवान की प्यास हो सकती है, भगवान को पाने की तीव्र आकांक्षा हो सकती है, लेकिन भगवान का नाम स्मरण नहीं हो सकता। क्योंकि नाम उसका कोई भी नहीं है। एक आदमी बैठ कर राम-राम दोहरा रहा है,

एक एक कदम

दूसरा आदमी जिनेंद्र-जिनेंद्र कर रहा है, तीसरा आदमी नमो बुद्धाय, और कोई चौथा आदमी कुछ और नाम ले रहा है। ये सब नाम हमारी अपनी ईजादें हैं। इन नामों से परमात्मा का क्या संबंध है?

परमात्मा का कोई नाम नहीं है। जब तक हम नाम दोहरा रहे हैं, तब तक हमारा परमात्मा से कोई संबंध न होगा। हम आदमी के जगत के भीतर चल रहे हैं। हम मनुष्य की भाषा के भीतर यात्रा कर रहे हैं। और वहां जहां मनुष्य की सारी भाषा बंद हो जाती है, सारे शब्द खो जाते हैं, वहां हम किन नामों को लेकर जाएंगे? सब नाम आदमियों के दिए हुए हैं। सच तो यह है कि आदमी खुद भी बिना नाम के पैदा होता है। आदमी के नाम भी सब झूठे हैं, कामचलाऊ हैं, यूटिलिटेरियन हैं, उनका सत्य से कोई भी संबंध नहीं है। हम जब पैदा होते हैं तो बिना नाम के, और जब हम मृत्यु में प्रविष्ट होते हैं तब फिर बिना नाम के। बीच में नाम का थोड़ा-सा संबंध हम पैदा कर लेते हैं और उस नाम को हम मान लेते हैं कि यह हमारा होना है। हमने अपने लिए नाम देकर एक धोखा पैदा किया है। वहां तक ठीक था, आदमी क्षमा किया जा सकता था। उसने भगवान को भी नाम दे दिए! और नाम देने से एक तरकीब मिल गई उसे कि उस नाम को वह दोहरा लेता है दस मिनट और सोचता है कि मैंने परमात्मा का स्मरण किया।

नाम से परमात्मा का कोई भी संबंध नहीं है। आप बैठ कर कुर्सी, कुर्सी, कुर्सी दोहरा लें दस मिनट; दरवाजा, दरवाजा, दरवाजा दोहरा लें; पत्थर, पत्थर दोहरा लें; या आप कोई और नाम लेकर दोहरा लें, इस शब्द से कोई भी धर्म का संबंध नहीं है। शब्दों को दोहराने से धर्म का कोई संबंध नहीं है। धर्म का संबंध है निःशब्द से, धर्म का संबंध है मौन से, धर्म का संबंध है परिपूर्ण भीतर जब विचार शून्य हो जाते हैं और शांत हो जाते हैं तब, तब धर्म की यात्रा शुरू होती है। और एक आदमी बैठ कर रिपीट कर लेता है एक नाम को; राम, राम, राम, राम दस-पांच दफा कहा और उससे निपटारा हो गया, उसने भगवान को स्मरण कर लिया।

तो हमने तरकीबें ईजाद कर ली हैं धार्मिक दिखाई पड़ने की--बिना धार्मिक हुए। और उन तरकीबों में हम जी रहे हैं और सोच रहे हैं कि पूरा मुल्क धार्मिक हो गया है। तिब्बत में वे और भी ज्यादा होशियार हैं। उन्होंने प्रेयर-व्हील बना रखा है, उन्होंने एक चक्का बना रखा है, उसको वे प्रार्थना-चक्र कहते हैं। उस चक्के के एक सौ आठ स्पोक हैं। एक-एक स्पोक पर एक-एक मंत्र लिखा हुआ है। सुबह से आदमी बैठ कर उस चक्के को घुमा देता है। जितना चक्का चक्कर लगा लेता है, उतनी बार एक सौ आठ में गुणा करके वह समझ लेता है कि इतनी बार मैंने मंत्र का पाठ किया। वह प्रेयर-व्हील सुबह से आदमी दस दफे घुमा देता है, वह सौ दफे घूम जाता है। एक सौ आठ में सौ का गुणा कर लिया। इतनी बार मैंने भगवान का नाम लिया! और अपने काम पर चला जाता है। वह हमसे ज्यादा होशियार है। नाम लेने की झंझट ही उन्होंने छोड़ दी। अपना काम भी करते रहते हैं और चक्का चला देते हैं!

हम भी यही करते हैं। मन हमारा दूसरा काम करता रहता है और जबान हमारी राम-राम करती रहती है। जबान राम-राम कर रही हो कि एक प्रेयर-व्हील पर राम-राम लिखा हो, क्या फर्क पड़ता है! भीतर मन हमारा कुछ और कर रहा है। अब तो और व्यवस्था हो गई है। अभी तक तिब्बत में बिजली नहीं पहुंची थी, अब पहुंच गई होगी। तो अब तो उनको हाथ से भी घुमाने की जरूरत नहीं, बिजली से प्लग लगा देंगे, चक्कर घूमता रहेगा दिन भर और हजारों दफा राम का स्मरण करने का लाभ मिल जाएगा!

आदमी ने अपने को धोखा देने के लिए हजार तरह की तरकीबें ईजाद कर ली हैं। उन्हीं तरकीबों को हम धर्म मानते रहे हैं। और इसीलिए हमारे मुल्क में यह दुविधा खड़ी हो गई है कि हम कहने को धार्मिक हैं और हम जैसा अधार्मिक आचरण आज पृथ्वी पर कहीं भी खोजने से नहीं मिल सकता है। हमसे ज्यादा अनैतिक लोग, हमसे ज्यादा चरित्र में गिरे हुए लोग, हमसे ज्यादा ओछे, हमसे ज्यादा संकीर्ण, हमसे ज्यादा क्षुद्रता में जीने वाले लोग और कहीं मिलने कठिन हैं। और साथ ही हमें धार्मिक होने का भी सुख है कि हम धार्मिक हैं। ये दोनों बातें एक साथ चल रही हैं। और कोई यह कहने को नहीं है कि ये दोनों बातें एक साथ कैसे चल सकती हैं!

यह ऐसा ही है जैसे किसी घर में लोगों को खयाल हो कि हजारों दीए जल रहे हैं, और घर अंधकार से भरा हो। और जो भी आदमी निकलता हो, दीवार से टकरा जाता हो, दरवाजे से टकरा जाता हो, और घर में पूरा

अंधकार हो। हर आदमी टकराता हो, फिर भी घर के लोग यह विश्वास करते हों कि अंधेरा कहां है? दीए जल रहे हैं! और रोज हर आदमी टकरा कर गिरता हो, फिर भी घर के लोग मानते चले जाते हों कि दीए जल रहे हैं, रोशनी है, अंधेरा कहां है?

हमारी हालत ऐसी ही कंट्राडिक्टरी, ऐसे विरोधाभास से भरी हुई है। जीवन हमें रोज बताता है कि हम अधार्मिक हैं, और हमने जो तरकीबें ईजाद कर ली हैं, वे रोज हमें बताती हैं कि हम धार्मिक हैं। कि देखो, दुर्गोत्सव आ गया और सारा मुल्क धार्मिक हुआ जा रहा है। कि देखो गणेशोत्सव आ गया, कि देखो महावीर का जन्म-दिन आ गया और सारा मुल्क मंदिरों की तरफ चला जा रहा है। पूजा चल रही है, प्रार्थना चल रही है। अगर इस सबको कोई आकाश से देखता होगा तो कहता होगा, कितने धार्मिक लोग हैं! और कोई हमारे भीतर जाकर देखे, कोई हमारे आचरण को देखे, कोई हमारे व्यक्तित्व को देखे, तो हैरान हो जाएगा। शायद मनुष्य-जाति के इतिहास में इतना धोखा पैदा करने में कोई कौम कभी सफल नहीं हो सकी थी, जिसमें हम सफल हो गए हैं। यह अदभुत बात है। यह कैसे संभव हो गया?

इसका जिम्मा आप पर है, ऐसा मैं नहीं कहता हूं। इसका जिम्मा हमारे पूरे इतिहास पर है। यह आज की पीढ़ी ऐसी हो गई है, ऐसा मैं नहीं कहता हूं। आज तक हमने धर्मों के प्रति जो धारणा बनाई है उसमें बुनियादी भूल है और इसलिए हम बिना धार्मिक हुए धार्मिक होने के खयाल से भर गए हैं। उन भूलों के कुछ सूत्रों पर मैं आपसे बात करना चाहता हूं, ताकि यह दिखाई पड़ सके कि हम धार्मिक क्यों नहीं हैं, और यह भी दिखाई पड़ सके कि हम धार्मिक कैसे हो सकते हैं।

इसके पहले कि वे चार सूत्र मैं आपसे कहूं, यह भी आपसे कह देना चाहता हूं कि जब तक कोई जाति, कोई समाज, कोई देश, कोई मनुष्य धार्मिक नहीं हो जाता, तब तक उसे जीवन के पूरे आनंद का, पूरी शांति का, पूरी कृतार्थता का कोई भी अनुभव नहीं होता है। जैसे विज्ञान है बाहर के जगत के विकास के लिए और बिना विज्ञान के जैसे दीन-हीन हो जाता है समाज, दरिद्र हो जाता है, दुखी और पीड़ित और बीमार हो जाता है; विज्ञान न हो आज, तो बाहर के जगत में हम दीन-हीन, पशुओं की भांति हो जाएंगे; वैसे ही भीतर के जगत का विज्ञान धर्म है। और जब भीतर का धर्म खो जाता है, तो भीतर एक दीनता आ जाती है, हीनता आ जाती है, भीतर एक अंधेरा छा जाता है। और भीतर का अंधेरा बाहर के अंधेरे से ज्यादा खतरनाक है। क्योंकि बाहर का अंधेरा दो पैसे के दीए को खरीद कर मिटाया जा सकता है, लेकिन भीतर का अंधेरा तो तभी मिटता है, जब आत्मा का दीया जल जाए। और वह दीया कहीं बाजार में खरीदने से नहीं मिलता है, उस दीए को जलाने के लिए तो श्रम करना पड़ता है, संकल्प करना पड़ता है, साधना करनी पड़ती है। उस दीए को जलाने के लिए तो जीवन को एक नई दिशा में गतिमान करना पड़ता है।

लेकिन इतना निश्चित है कि आज तक पृथ्वी पर सबसे ज्यादा प्रसन्न और आनंदित लोग वे ही थे, जो धार्मिक थे। उन लोगों ने ही इस पृथ्वी पर स्वर्ग को अनुभव किया है। उन लोगों ने ही इस जीवन के पूरे आनंद को, कृतार्थता को अनुभव किया है। उनके जीवन में ही अमृत की वर्षा हुई है जो धार्मिक थे। जो अधार्मिक हैं वे दुख में, पीड़ा में और नरक में जीते हैं।

धार्मिक हुए बिना कोई मार्ग नहीं है। लेकिन धार्मिक होने के लिए सबसे बड़ी बाधा इस बात से पड़ गई है कि हम इस बात को मान कर बैठ गए हैं कि हम धार्मिक हैं। फिर अब और कुछ करने की कोई जरूरत नहीं रह गई। एक भिखारी मान लेता है कि मैं सम्राट हूं, फिर बात खत्म हो गई। फिर अब उसे सम्राट होने के लिए कोई प्रयत्न करने का कोई सवाल न रहा। सस्ती तरकीब निकाल ली उसने। सम्राट हो गया है कल्पना करके। असली में सम्राट होने के लिए श्रम करना पड़ता, यात्रा करनी पड़ती, संघर्ष करना पड़ता। उसने सपना देख लिया सम्राट होने का। लेकिन उस भिखारी को हम पागल कहेंगे, क्योंकि पागल का यही लक्षण है कि वह जो नहीं है, वह अपने को मान लेता है।

मैंने सुना है, एक पागलखाने का नेहरू निरीक्षण करने गए थे। उस पागलखाने में उन्होंने जाकर पूछा कि कभी कोई यहां ठीक होता है? स्वस्थ होता है? रोग से मुक्त होता है? तो पागलखाने के अधिकारियों ने कहा कि

निश्चित ही, अक्सर लोग ठीक होकर चले जाते हैं। अभी एक आदमी ठीक हुआ है और हम उसे तीन दिन पहले छोड़ने को थे, लेकिन हमने रोक रखा कि आपके हाथ से ही उसे हम मुक्ति दिलाएंगे।

उस पागल को लाया गया, जो ठीक हो गया था। उसे नेहरू से मिलाया गया। नेहरू ने उसे शुभकामना दी कि तुम स्वस्थ हो गए हो, बहुत अच्छा है। चलते-चलते उस आदमी ने पूछा कि मैं लेकिन आपका नाम नहीं पूछ पाया कि आप कौन हैं? नेहरू ने कहा, मेरा नाम जवाहरलाल नेहरू है। वह आदमी हंसने लगा। और उसने कहा, आप घबड़ाइए मत। कुछ दिन आप भी इस जेल में रह जाएंगे, तो ठीक हो जाएंगे। पहले मुझे भी यह खयाल था कि मैं जवाहरलाल नेहरू हूं। तीन साल पहले जब आया था, तो मुझको भी यही भ्रम था--यही भ्रम मुझको भी हो गया था कि मैं जवाहरलाल हूं। लेकिन तीन साल में इन सब अधिकारियों की कृपा से मैं बिलकुल ठीक हो गया हूं। मेरा यह भ्रम मिट गया। आप भी घबड़ाइए मत। आप भी दोत्तीन साल रह जाएंगे, तो बिलकुल ठीक हो सकते हैं।

आदमी के पागलपन का लक्षण यह है कि वह जो है, नहीं समझ पाता; और जो नहीं है, उसके साथ तादात्म्य कर लेता है कि वह मैं हूं। भारत को मैं धार्मिक अर्थों में एक विक्षिप्त स्थिति में समझता हूं, मैडनेस की स्थिति में समझता हूं। हम धार्मिक नहीं हैं और हम अपने को धार्मिक समझ रहे हैं।

लेकिन यह दुर्घटना कैसे संभव हो सकी? यह दुर्घटना कैसे फलित हुई? यह कैसे हो सका? उसके होने के कुछ सूत्रों पर आपसे बात करनी है।

पहला सूत्रः भारत धार्मिक नहीं हो सका, क्योंकि भारत ने धर्म की एक धारणा विकसित की जो पारलौकिक थी; जो मृत्यु के बाद के जीवन के संबंध में विचार करती थी, जो इस जीवन के संबंध में विचार नहीं करती थी।

हमारे हाथ में यह जीवन है। मृत्यु के बाद का जीवन अभी हमारे हाथ में नहीं है। होगा, तो मरने के बाद होगा। भारत का धर्म जो है, वह मरने के बाद के लिए तो व्यवस्था करता है, लेकिन जीवन जो अभी हम जी रहे हैं पृथ्वी पर, उसके लिए हमने कोई सुव्यवस्थित व्यवस्था नहीं की। स्वाभाविक परिणाम हुआ। परिणाम यह हुआ कि यह जीवन हमारा अधार्मिक होता चला गया। और उस जीवन की व्यवस्था के लिए जो कुछ हम कर सकते थे थोड़ा-बहुत, वह हम करते रहे। कभी दान करते रहे, कभी तीर्थयात्रा करते रहे, कभी गुरु की, शास्त्रों के चरणों की सेवा करते रहे। और फिर हमने यह विश्वास किया कि जिंदगी बीत जाने दो, जब बूढ़े हो जाएंगे, तब धर्म की चिंता कर लेंगे। अगर कोई जवान आदमी उत्सुक होता है धर्म में तो घर के बड़े-बूढ़े कहते हैं, अभी तुम्हारी उम्र नहीं है कि तुम धर्म की बातें करो। अभी तुम्हारी उम्र नहीं। अभी खेलने-खाने के, मजे-मौज के दिन हैं। ये तो बूढ़ों की बातें हैं। जब आदमी बूढ़ा हो जाता है, तब धर्म की बातें करता है। मंदिरों में जाकर देखें, मस्जिदों में जाकर देखें, वहां वृद्ध लोग दिखाई पड़ेंगे। वहां जवान आदमी शायद ही कभी दिखाई पड़े। क्यों?

हमने यह धारणा बना ली कि धर्म का संबंध है उस लोक से, मृत्यु के बाद जो जीवन है उससे। तो जब हम मरने के करीब पहुंचेंगे तब विचार करेंगे। फिर जो बहुत होशियार थे उन्होंने कहा कि मरते क्षण में अगर एक दफे राम का नाम भी ले लो, भगवान का स्मरण कर लो, गीता सुन लो, गायत्री सुन लो, नमोकार मंत्र कान में डाल दो--आदमी पार हो जाता है। तो जीवन भर परेशान होने की जरूरत क्या है! मरते-मरते आदमी के कान में मंत्र फूंक देते हैं और निपटारा हो जाता है, आदमी धार्मिक हो जाता है।

यहां तक बेईमान लोगों ने कहानियां गढ़ ली हैं कि एक आदमी मर रहा था, उसके लड़के का नाम नारायण था। मरते वक्त उसने अपने लड़के को बुलाया कि नारायण, तू कहां है? और भगवान धोखे में आ गए! वे समझे कि मुझे बुलाता है और उसको स्वर्ग भेज दिया।

ऐसे बेईमान लोग, ऐसे धोखेबाज लोग, जिन्होंने ऐसी कहानियां गढ़ी होंगी, ऐसे शास्त्र रचे होंगे, उन्होंने इस मुल्क को अधार्मिक होने की सारी व्यवस्था कर दी।

यह देश धार्मिक नहीं हो पाया पांच हजार वर्षों के प्रयत्न के बाद भी, क्योंकि हमने जीवन से धर्म का संबंध नहीं जोड़ा, मृत्यु से धर्म का संबंध जोड़ा। तो ठीक है, मरने के बाद--वह बात इतनी दूर है कि जो अभी जिंदा

हैं, उन्हें उसका खयाल भी नहीं हो सकता। बच्चों को कैसे उसका खयाल हो! अभी बच्चों को मृत्यु का कोई सवाल नहीं है। जवानों को मृत्यु का कोई सवाल नहीं है। सिर्फ वे लोग जो मृत्यु के करीब पहुंचने लगे और मृत्यु की छाया जिन पर पड़ने लगी, उन वृद्धजनों के लिए भर धर्म का विचार जरूरी था।

और स्मरण रहे कि वृद्धों से जीवन नहीं बनता, जीवन बच्चों और जवानों से बनता है। जो जीवन से विदा होने लगे वे वृद्ध हैं। तो वृद्ध अगर धार्मिक भी हो जाएं तो जीवन धार्मिक नहीं होगा, क्योंकि वृद्ध धार्मिक होते-होते विदा के स्थान पर पहुंच जाएंगे, वे विदा हो जाएंगे। जिनसे जीवन बनना है, जो जीवन के घटक हैं, उन छोटे बच्चों और जवानों से धर्म का क्या संबंध है? उनके लिए धर्म ने कोई भी व्यवस्था नहीं दी कि वे कैसे धार्मिक हों।

फिर जब पारलौकिक बात हो गई धर्म की, तो कम ही लोगों के लिए चिंता रही उसकी। क्योंकि परलोक इतना दूर है कि उसकी चिंता सामान्य मनुष्य के लिए करनी कठिन है। कुछ लोग, जो अति लोभी हैं, इतने लोभी हैं कि वे इस जीवन का भी इंतजाम करना चाहते हैं और मरने के बाद का भी इंतजाम करना चाहते हैं, जिनकी ग्रीड, जिनका लोभ इतना ज्यादा है, वे लोग भर धार्मिक होने का विचार करते हैं। जिनका लोभ थोड़ा कम है, वे फिक्र नहीं करते, कि मरने के बाद जो होगा वह देखा जाएगा।

तो अजीब बात हो गई। हमारे बीच जो सबसे ज्यादा लोभी लोग हैं, वे लोग संन्यासी हो जाते हैं, क्योंकि उन्हें इसी जीवन का इंतजाम नहीं करना है, उन्हें अगले जीवन का इंतजाम भी करना है। लेकिन जो सामान्य लोभ के लोग हैं, वे कहते हैं, ठीक है, मकान बन जाए, धन हो जाए, फिर देखा जाएगा। मौत जब आएगी, तब देखेंगे। अभी इतना मौत का विचार करने की जरूरत नहीं है। और यह स्वस्थ लक्षण है। यह कोई अस्वस्थ लक्षण नहीं है। जो आदमी जिंदा रहते हुए मृत्यु का बहुत चिंतन करता है, वह अस्वस्थ है, वह बीमार है, वह रुग्ण है। उस आदमी के जीवन-ऊर्जा में कहीं कोई कमी है। वह जीने की कला नहीं जानता है, इसलिए मृत्यु के बाबत सोचना शुरू कर दिया।

स्वामी राम जापान गए। जिस जहाज पर वह थे, एक नब्बे वर्ष का जर्मन बूढ़ा चीनी भाषा सीख रहा था। अब चीनी भाषा सीखनी बहुत कठिन बात है। शायद मनुष्य की जितनी भाषाएं हैं, उनमें सबसे ज्यादा कठिन बात है। क्योंकि चीनी भाषा के कोई वर्णाक्षर नहीं होते, कोई क ख ग नहीं होता। वह तो चित्रों की भाषा है। इतने चित्रों को सीखना नब्बे वर्ष की उम्र में! अंदाजन किसी भी आदमी को दस वर्ष लग जाते हैं ठीक से चीनी भाषा सीखने में।

तो नब्बे वर्ष का बूढ़ा सीख रहा है सुबह से सांझ तक, यह कब सीख पाएगा? सीखने के पहले इसके मर जाने की संभावना है। और अगर हम यह भी मान लें, बहुत आशावादी हों कि यह जी जाएगा दस-पंद्रह साल, तो भी उस भाषा का उपयोग कब करेगा? जिस चीज को दस साल सीखने में लग जाएं, अगर दस-पच्चीस वर्ष उसके उपयोग के लिए न मिलें, तो वह सीखना व्यर्थ है। लेकिन वह बूढ़ा सुबह से सांझ तक डेक पर बैठा हुआ है और सीख रहा है!

रामतीर्थ के बरदाश्त के बाहर हो गया। उन्होंने जाकर तीसरे दिन उससे कहा कि क्षमा करें, मैं आपको बाधा देना चाहता हूं। एक बात मुझे पूछनी है। आप यह क्या कर रहे हैं? यह चीनी भाषा आप कब सीख पाएंगे? आपकी उम्र तो नब्बे वर्ष हुई! और उस बूढ? आदमी ने रामतीर्थ की तरफ देखा और उसने कहा कि जब तक मैं जिंदा हूं, तब तक जिंदा हूं। और जब तक मैं जिंदा हूं, तब तक मर नहीं गया हूं। मरने का चिंतन करके मैं मरने के पहले नहीं मरना चाहता हूं। और अगर मरने का हम चिंतन करें कि कल मैं मर जाऊंगा, तो यह तो मुझे जन्म के पहले दिन से ही विचार करना पड़ता कि कल मैं मर सकता हूं, कभी भी मर सकता हूं। तो फिर मैं जी भी नहीं पाता। लेकिन नब्बे साल मैं जीया हूं। और जब तक मैं जी रहा हूं, तब तक सीखूंगा, ज्यादा से ज्यादा जानूंगा, ज्यादा से ज्यादा जीऊंगा। क्योंकि जब तक जी रहा हूं, तब तक एक-एक क्षण का पूरा उपभोग करना जरूरी है ताकि मेरा पूरा आत्म-विकास हो।

और उसने रामतीर्थ से पूछा कि आपकी उम्र क्या है? रामतीर्थ की उम्र तो केवल बत्तीस वर्ष थी। वे बहुत झेंपे होंगे मन में, और कहा कि सिर्फ बत्तीस वर्ष। तो उस बूढे आदमी ने जो कहा था, वह पूरे भारत को सुन लेना

चाहिए। और उस बूढे आदमी ने कहा था कि तुम्हें देख कर मैं समझता हूं कि तुम्हारी पूरी कौम बूढी क्यों हो गई है। तुम्हारी पूरी कौम से यौवन, शक्ति, ऊर्जा क्यों चली गई है। तुम क्यों मुर्दे की तरह जी रहे हो पृथ्वी पर। क्योंकि तुम मृत्यु के संबंध में अत्यधिक विचार करते हो और जीवन के संबंध में जरा भी नहीं।

शास्त्र भरे पड़े हैं, जो नर्क में क्या है और कहां--पहला नर्क कहां है, दूसरा नर्क कहां है, तीसरा कहां है, सातवां कहां है--उस सबकी ब्योरेवार व्यवस्था बताते हैं। पूरे नक्शे बनाए हैं। स्वर्ग कहां है, सात स्वर्ग हैं, कि कितने स्वर्ग हैं, उन सबका हिसाब दिया हुआ है। नर्क और स्वर्ग की पूरी ज्यॉग्राफी हमने खोज ली है। लेकिन पृथ्वी की ज्यॉग्राफी खोजने के लिए पश्चिम के लोगों का हमें इंतजार करना पड़ा। वह हम नहीं खोज पाए। क्योंकि पृथ्वी पर हम जीते हैं, उसके भूगोल की जानकारी की हमने कोई फिक्र न की। लेकिन जिन स्वर्गों और नर्कों का हमें कोई संबंध नहीं है, उनकी हमने इस संबंध में पूरी जानकारी कर ली है। हमने इतने डिटेल्स में व्यवस्था की है कि अगर कोई पढ़ेगा, तो यह नहीं कह सकता कि यह कोई काल्पनिक लोगों ने लिखा होगा। एक-एक इंच हमने इंतजाम कर दिया है कि वहां कैसा नर्क है, कितनी आग जलती है, कितने कड़ाहे जलते हैं, कितने राक्षस हैं और किस तरह लोगों को जलाते हैं और क्या करते हैं। स्वर्ग में क्या है, वह हमने इंतजाम कर लिया है। लेकिन इस जमीन पर क्या है? इस जमीन की हमने कोई फिक्र नहीं की, क्योंकि यह जमीन तो एक विश्रामगृह है, मर जाना है यहां से तो जल्दी। इसकी चिंता करने की क्या जरूरत है?

जीवन अधार्मिक है, क्योंकि जीवन की चिंता हमने नहीं की। जीवन धार्मिक नहीं हो सकता जब तक धर्म इस जीवन के संबंध में विचार करे, इस जीवन को व्यवस्था दे, इस जीवन को वैज्ञानिक बनाए--जब तक यह नहीं होगा, तब तक जीवन धार्मिक नहीं हो सकता।

पहली बात है: परलोक के संबंध में अति चिंतन ने भारत को अधार्मिक होने में सहायता दी, धार्मिक होने में जरा भी नहीं। सोचा शायद हमने यही था कि परलोक का यह भय लोगों को धार्मिक बना देगा। सोचा शायद हमने यही था कि परलोक की चिंता लोगों को अधार्मिक नहीं होने देगी। लेकिन हुआ उलटा, हुआ यह कि परलोक इतना दूर मालूम पड़ा कि वह हमारा कोई कंसर्न ही नहीं है, हमारा उससे कोई संबंध, नाता नहीं है। हमारा नाता है इस जीवन से। और इस जीवन को कैसे जीया जाए, इस जीवन की कला क्या है, वह सिखाने वाला हमें कोई भी न था।

धर्म हमें सिखाता था, जीवन कैसे छोड़ा जाए। जीवन कैसे जीया जाए, यह बताने वाला धर्म न था। धर्म बताता था, जीवन कैसे छोड़ा जाए, जीवन कैसे त्यागा जाए, जीवन से कैसे भागा जाए--इसके सारे नियम--शुरू से लेकर आखिर तक हमने सारे नियम इसके खोज लिए कि जीवन को छोड़ने की पद्धति क्या है। लेकिन जीवन को जीने की पद्धति क्या है, उसके संबंध में धर्म मौन है। परिणाम स्वाभाविक था।

जीवन को छोड़ने वाली कौम कैसे धार्मिक हो सकती है? जीना तो है जीवन को। कितने लोग भागेंगे? और जो भाग कर भी जाएंगे, वे जाते कहां हैं? संन्यासी भाग कर, साधु भाग कर जाता कहां है? भागता कहां है, सिर्फ धोखा पैदा होता है भागने का। सिर्फ श्रम से भाग जाता है, समाज से भाग जाता है, लेकिन समाज के ऊपर पूरे समय निर्भर रहता है। समाज से रोटी पाता है, इज्जत पाता है। समाज से कपड़े पाता है, समाज के बीच जीता है, समाज पर निर्भर होता है। सिर्फ एक फर्क हो जाता है। वह फर्क यह है कि वह विशुद्ध रूप से शोषक हो जाता है; श्रमिक नहीं रह जाता। वह कोई श्रम नहीं करता, सिर्फ शोषण करता है।

कितने लोग संन्यासी हो सकते हैं? अगर पूरा समाज भागने वाला समाज हो जाए, तो पचास वर्ष में उस देश में एक भी जीवित प्राणी नहीं बचेगा। पचास वर्षों में सारे लोग समाप्त हो जाएंगे। लेकिन पचास वर्ष भी लंबा समय है। अगर सारे लोग संन्यासी हो जाएं, तो पंद्रह दिन भी बचना बहुत मुश्किल है। क्योंकि किसका शोषण करिएगा? किसके आधार पर जीइएगा?

भागने वाला धर्म, एस्केपिस्ट रिलीजन कभी भी जिंदगी को बदलने वाला धर्म नहीं हो सकता। थोड़े-से लोग भागेंगे। और जो भाग जाएंगे, वे उन पर निर्भर रहेंगे, जो भागे नहीं हैं।

अब यह बड़े चमत्कार की बात है कि संन्यासी गृहस्थ पर निर्भर है और गृहस्थ को नीचा समझता है अपने से। जिस पर निर्भर है, उसको नीचा समझता है, उसको चौबीस घंटे गालियां देता है। उसके पाप का बखान करता

है। उसके नर्क जाने की योजना बनाता है। और निर्भर उस पर है! और अगर ये गृहस्थ सब नर्क जाएंगे, तो इनकी रोटी खाने वाले, इनके कपड़े पहनने वाले संन्यासी इनके पीछे नर्क नहीं जाएंगे, तो और कहां जा सकते हैं? कहीं जाने का कोई उपाय नहीं हो सकता।

लेकिन भागने की एक दृष्टि जब हमने स्पष्ट कर ली कि जो भागता है, वह धार्मिक है; तो जो जीता है, वह तो अधार्मिक है; उसको धार्मिक ढंग से जीने का सोचने का कोई सवाल न रहा। वह तो अधार्मिक है, क्योंकि जीता है। भागता जो है, वह धार्मिक है! तो जीने वाले को धार्मिक होने का कोई विधान, कोई विधि, कोई टेक्नीक, कोई शिल्प हम नहीं खोज पाए।

मेरा कहना है, भारत धार्मिक हो सकता है, अगर हम धर्म को जीवनगत, उसे लाइफ अफर्मेटिव, जीवन की स्वीकृति का धर्म बनाएं--जीवन के निषेध का नहीं।

दूसरी बात, धर्म ने एक अतिशय काम किया। वह अति एक रिएक्शन थी, एक प्रतिक्रिया थी। सारी दुनिया में ऐसे लोग थे, जो मानते थे कि मनुष्य केवल शरीर है, शरीर के अतिरिक्त कोई आत्मा नहीं है। धर्म ने ठीक दूसरी अति, दूसरी एक्सट्रीम पकड़ ली और कहा कि आदमी सिर्फ आत्मा है। शरीर तो माया है, शरीर तो झूठ है।

ये दोनों ही बातें झूठ हैं। न तो आदमी केवल शरीर है और न आदमी केवल आत्मा है। ये दोनों बातें समान रूप से झूठ हैं। एक झूठ के विरोध में दूसरा झूठ खड़ा कर लिया। पश्चिम एक झूठ बोलता रहा है कि आदमी सिर्फ शरीर है और भारत एक झूठ बोल रहा है कि आदमी सिर्फ आत्मा है। ये दोनों सरासर झूठ हैं। पश्चिम अपने झूठ के कारण अधार्मिक हो गया, क्योंकि सिर्फ शरीर को मानने वाले लोग, उनके लिए धर्म का कोई सवाल न रहा। भारत अपने झूठ के कारण अधार्मिक हो गया, क्योंकि सिर्फ आत्मा को मानने वाले लोग शरीर का जो जीवन है, उसकी तरफ आंख बंद कर लिए। जो माया है, उसका विचार भी क्या करना? जो है ही नहीं, उसके संबंध में सोचना भी क्या? जब कि आदमी की जिंदगी शरीर और आत्मा का जोड़ है। वह शरीर और आत्मा का एक सम्मिलित संगीत है।

अगर हम आदमी को धार्मिक बनाना चाहते हैं, तो उसके शरीर को भी स्वीकार करना होगा, उसकी आत्मा को भी। निश्चित ही, उसके शरीर को बिना स्वीकार किए हम उसकी आत्मा की खोज में भी एक इंच आगे नहीं बढ़ सकते हैं। शरीर तो मिल भी जाए बिना आत्मा का कहीं, लेकिन आत्मा बिना शरीर की नहीं मिलती। शरीर आधार है, उस आधार पर ही आत्मा अभिव्यक्त होती है। वह मीडियम है, वह माध्यम है। इस माध्यम को इनकार जिन लोगों ने कर दिया, उन लोगों ने इस माध्यम को बदलने का, इस माध्यम को सुंदर बनाने का, इस माध्यम को ज्यादा सत्य के निकट ले जाने का सारा उपाय छोड़ दिया। शरीर का एक विरोध पैदा हुआ, एक दुश्मनी पैदा हुई। हम शरीर के शत्रु हो गए, और शरीर को जितना सताने में हम सफल हो सके, हम समझने लगे कि उतने हम धार्मिक हैं!

हमारी सारी तपश्चर्या शरीर को सताने की अनेक-अनेक योजनाओं के अतिरिक्त और क्या है? जिसे हम तप कहते हैं, जिसे हम त्याग कहते हैं, वह शरीर की शत्रुता के अतिरिक्त और क्या है? धीरे-धीरे यह खयाल पैदा हो गया है कि जो आदमी शरीर को जितना तोड़ता है, जितना नष्ट करता है, जितना दमन करता है, उतना ही आध्यात्मिक है।

शरीर को तोड़ने और नष्ट करने वाला आदमी विक्षिप्त हो सकता है, आध्यात्मिक नहीं। क्योंकि आत्मा का भी जो अनुभव है उसके लिए एक स्वस्थ, शांत और सुखी शरीर की आवश्यकता है। उस आत्मा के अनुभव के लिए भी एक ऐसे शरीर की आवश्यकता है, जिसे भूला जा सके।

क्या आपको पता है, दुखी शरीर को कभी भी नहीं भूला जा सकता! पैर में दर्द होता है तो पैर का पता चलता है। दर्द नहीं होता तो पैर का कोई पता नहीं चलता। सिर में दर्द होता है तो सिर का पता चलता है। दर्द नहीं होता तो सिर का कोई पता नहीं चलता। स्वास्थ्य की परिभाषा ही यही है कि जिस आदमी को अपने पूरे शरीर का कोई पता नहीं चलता, वह आदमी स्वस्थ है, वह आदमी हेल्दी है। जिस आदमी को शरीर के किसी भी अंग का बोध होता है, पता चलता है, वह आदमी उस अंग में बीमार है।

शरीर स्वस्थ हो, तो शरीर को भूला जा सकता है; और शरीर भूला जा सके, तो आत्मा की खोज की जा सकती है। लेकिन हमने जो व्यवस्था ईजाद की, उसमें शरीर को कष्ट देने को हमने अध्यात्म का मार्ग समझा है।

शरीर को कष्ट देने वाले लोग शरीर को कभी भी नहीं भूल पाते। कष्ट देकर शरीर को भूला नहीं जा सकता। कष्ट देने से शरीर और याद आता है। आपने ठीक से खाना खा लिया है तो पेट की आपको कोई याद न आएगी। और आप उपवासे रह गए हैं तो पेट की चौबीस घंटे याद आती रहेगी। पेट पीड़ा में है; पीड़ा खबर दे रही है। जीवन के नियम का अंग है यह कि शरीर कहीं कष्ट में हो, तो आपको खबर दे। क्योंकि अगर वह खबर न देगा, तो उसके कष्ट को दूर करने का फिर कोई मार्ग न रहा।

संस्कृत में तो वेदना के दो अर्थ होते हैं। वेदना का अर्थ दुख भी होता है, वेदना का अर्थ बोध भी होता है। इसलिए वेद जिस शब्द से बना, वेदना उसी से बनी। वेदना का मतलब है दुख, और वेदना का अर्थ है बोध। दुख का बोध होता ही है।

तो जितना आदमी अपने शरीर को कष्ट देगा, उतना शरीर का ज्यादा बोध होगा। शरीर को कष्ट देने वाले लोग एकदम शरीर को ही अनुभव करते रहते हैं, आत्मा का उन्हें कभी कुछ पता नहीं चलता।

लेकिन हमने हजारों साल में एक धारा विकसित की--शरीर की शत्रुता की। और शरीर के शत्रु हमें आध्यात्मिक मालूम होने लगे। तो जो आदमी अपने शरीर को कष्ट देने में जितना अग्रणी हो सकता था--कांटों पर लेट जाए कोई आदमी, तो वह महात्यागी मालूम होने लगा। शरीर को कोड़े मारे कोई आदमी और लहूलुहान हो जाए...।

यूरोप में कोड़े मारने वालों का एक संप्रदाय था। उस संप्रदाय के साधु सुबह से उठ कर कोड़े मारने शुरू कर देते। और जैसे हिंदुस्तान में उपवास करने वाले साधु हैं, जिनकी फेहरिस्त छपती है कि फलां साधु ने चालीस दिन का उपवास किया, फलां साधु ने सौ दिन का उपवास किया, वैसे ही यूरोप में वे जो कोड़े मारने वाले साधु थे, उनकी भी फेहरिस्त छपती थी कि फलां साधु सुबह एक सौ एक कोड़े मारता है, फलां साधु दो सौ एक कोड़े मारता है। जो जितने ज्यादा कोड़े मारता था, वह उतना बड़ा साधु था!

आंखें फोड़ लेने वाले लोग हुए, कान फोड़ लेने वाले लोग हुए, जननेंद्रिय काट लेने वाले लोग हुए, शरीर को सब तरह से नष्ट करने वाले लोग हुए! यूरोप में एक वर्ग था जो अपने पैर में जूता पहनता था, तो जूतों में नीचे खीले लगा लेता था, ताकि पैर में खीले चुभते रहें। वे महात्यागी समझे जाते थे, लोग उनके चरण छूते थे, क्योंकि महात्यागी हैं। आपका संन्यासी उतना त्यागी नहीं है, बिना जूते के ही चलता है सड़क पर। वह जूता भी पहनता था, नीचे खीले भी लगाता था। तो पैर में घाव हमेशा हरे होने चाहिए! खून गिरता रहना चाहिए! कमर में पट्टे बांधता था, पट्टों में खीले छिदे रहते थे, जो कमर में अंदर छिदे रहें और घाव हमेशा बने रहें। लोग उनके पट्टे खोल-खोल कर देखते थे कि कितने घाव हैं और कहते थे कि बड़े महान व्यक्ति हैं आप।

सारी दुनिया में शरीर के दुश्मनों ने धर्म के ऊपर कब्जा कर लिया है। ये आत्मवादी नहीं हैं, क्योंकि आत्मवादी को शरीर से कोई शत्रुता नहीं है। आत्मवादी के लिए शरीर एक वीहिकल है, शरीर एक सीढ़ी है, शरीर एक माध्यम है। उसे तोड़ने का कोई अर्थ नहीं। एक आदमी बैलगाड़ी पर बैठ कर जा रहा है। बैलगाड़ी को चोट पहुंचाने से क्या मतलब है? हम शरीर पर यात्रा कर रहे हैं, शरीर एक बैलगाड़ी है। उसे नष्ट करने से क्या प्रयोजन है? वह जितना स्वस्थ होगा, जितना शांत होगा, उतना ही उसे भूला जा सकता है।

तो दूसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूं: भारत के धर्म ने चूंकि शरीर को इनकार किया, इसलिए अधिकतम लोग अधार्मिक रह गए। वे शरीर को इतना इनकार नहीं कर सके। तो उन्होंने एक काम किया कि जो शरीर को इनकार करते थे, उनकी पूजा की, लेकिन खुद अधार्मिक होने को राजी रह गए, क्योंकि शरीर को बिना चोट पहुंचाए धार्मिक होने का कोई उपाय न था।

अगर भारत को धार्मिक बनाना है, तो एक स्वस्थ शरीर की विचारणा धर्म के साथ संयुक्त करनी जरूरी है और यह ध्यान दिलाना जरूरी है कि जो लोग शरीर को चोट पहुंचाते हैं, ये न्यूरोटिक हैं, ये विक्षिप्त हैं, ये

मानसिक रूप से बीमार हैं। ये आदमी स्वस्थ नहीं हैं, स्वस्थ भी नहीं हैं आध्यात्मिक तो बिलकुल नहीं हैं। इन आदमियों की मानसिक चिकित्सा की जरूरत है। लेकिन ये हमारे लिए आध्यात्मिक थे।

तो यह अध्यात्म की गलत धारणा हमें धार्मिक नहीं होने दी।

तीसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूं: अब तक, आज तक की हमारी सारी विचारणा इस बात को मान कर चलती रही है कि धर्म एक विश्वास है, बिलीफ है, फेथ है। विश्वास कर लेना है और धार्मिक हो जाना है। यह बात बिलकुल ही गलत है। कोई आदमी विश्वास करने से धार्मिक नहीं हो सकता। क्योंकि विश्वास सदा झूठा है। विश्वास का मतलब है, जो मैं नहीं जानता, उसको मान लेना। झूठ का और क्या अर्थ हो सकता है? जो मैं नहीं जानता, उसको मान लूं?

धार्मिक आदमी जो नहीं जानता, उसे मानने को राजी नहीं होगा। वह कहेगा कि मैं खोज करूंगा, मैं समझूंगा, मैं विचार करूंगा, मैं प्रयोग करूंगा, मैं अनुभव करूंगा। जिस दिन मुझे पता चलेगा, मैं मान लूंगा। लेकिन जब तक मैं नहीं जानता हूं, मैं कैसे मान सकता हूं!

लेकिन हम जिन बातों को बिलकुल नहीं जानते हैं, उनको मान कर बैठ गए हैं। और इनको मान कर बैठ जाने के कारण हमारी इंक्वायरी, हमारी खोज, हमारी जिज्ञासा बंद हो गई है।

विश्वास ने भारत के धर्म के प्राण ले लिए हैं। जिज्ञासा चाहिए, विश्वास नहीं। विश्वास खतरनाक है, पायजनस है, क्योंकि विश्वास जिज्ञासा की हत्या कर देता है। और हम छोटे-छोटे बच्चों को धर्म का विश्वास देने की कोशिश करते हैं। सिखाने की कोशिश करते हैं: ईश्वर है, आत्मा है, परलोक है, मृत्यु है; यह है, वह है! पुनर्जन्म है, कर्म है--यह हम सब सिखाने की कोशिश करते हैं। हम जबरदस्ती उस बच्चे को सिखा देते हैं, जिस बच्चे को इन बातों का कोई भी पता नहीं है। उसके भीतर प्राणों के प्राण कह रहे होंगे, मुझे तो कुछ पता नहीं है! लेकिन अगर वह कहे कि मुझे पता नहीं, तो हम कहेंगे कि तू नास्तिक है। जिनको पता है, वे कहते हैं कि ये चीजें हैं, इनको मान! हम उसके संदेह को दबा रहे हैं और ऊपर से विश्वास थोप रहे हैं। उसका संदेह भीतर सरक जाएगा प्राणों में और विश्वास ऊपर बैठ जाएगा।

जो प्राणों में सरक गया, वही सत्य है। जो ऊपर कपड़ों की तरह टंगा हुआ है वह सत्य नहीं है। इसलिए आदमी धार्मिक दिखाई पड़ता है, धार्मिक नहीं है। धर्म केवल वस्त्र है। उसकी आत्मा में संदेह मौजूद है। उसकी आत्मा में शक मौजूद है कि ये बातें हैं? आदमी मंदिर में हाथ जोड़ कर सामने खड़ा हुआ है। ऊपर से हाथ जोड़े हुए है, कह रहा है कि हे भगवान! और भीतर संदेह मौजूद है कि मैं एक पत्थर की मूर्ति के सामने खड़ा हूं। इसमें भगवान है?

वह संदेह हमेशा मौजूद रहेगा। वह संदेह तभी मिटेगा, जब हमारा अनुभव होगा कि भगवान है। उसके पहले वह संदेह नहीं मिट सकता। और उसको जितनी छिपाने की कोशिश करिएगा, वह उतना ही गहरे भीतर उतर जाएगा। और जितने गहरे उतर जाएगा उतना ही आदमी गलत रास्ते पर पहुंच गया, क्योंकि आदमी दो हिस्सों में विभाजित हो गया। उसकी आत्मा में संदेह है और बुद्धि में विश्वास है। तो बौद्धिक रूप से हम सब धार्मिक हैं, आत्मिक रूप से हम कोई भी धार्मिक नहीं हैं।

मेरे एक शिक्षक थे। अपने गांव जाता था, तो उनके घर जाता था। एक बार सात दिन गांव पर रुका था। दो या तीन दिन उनके घर गया। चौथे दिन उन्होंने अपने लड़के को एक चिट्ठी लिख कर भेजा कि अब कल से कृपा करके मेरे घर मत आना। तुम आते हो, तो मुझे खुशी होती है। मैं वर्ष भर प्रतीक्षा करता हूं कि कब तुम आओगे और इस वर्ष मैं जीऊंगा कि नहीं! तुम्हें मिल पाऊंगा कि नहीं! लेकिन नहीं, अब मैं प्रार्थना करता हूं कि मेरे घर आज से मत आना। क्योंकि कल रात तुमसे बात हुई और जब मैं सुबह प्रार्थना करने बैठा अपने मंदिर में जहां मैं चालीस वर्षों से भगवान की पूजा करता हूं, तो मुझे एकदम ऐसा लगा कि मैं पागलपन तो नहीं कर रहा हूं! सामने एक मूर्ति रखी है, जिसको मैं ही खरीद लाया था, और उस मूर्ति के सामने मैं आरती कर रहा हूं। अगर कहीं यह सिर्फ पत्थर है, तो मैं पागल हूं और चालीस साल मैंने फिजूल गंवाए। नहीं, मैं डर गया। मुझे बहुत संदेह आ गया और चालीस साल की मेरी पूजा डगमगा गई। अब तुम यहां मत आना।

मैंने उनको वापस उत्तर दिया कि एक बार तो मैं और आऊंगा, फिर मैं नहीं आऊंगा। क्योंकि एक बार मेरा आना बहुत जरूरी है। सिर्फ यह निवेदन करने मुझे आना है कि चालीस साल की पूजा और प्रार्थना के बाद अगर एक आदमी आ जाए और घंटे भर की उसकी बात चालीस साल की पूजा और प्रार्थना को डगमगा दे, तो इसका मतलब क्या है? इसका मतलब यह है कि चालीस साल की पूजा और प्रार्थना झूठी थी, ऊपर खड़ी थी, भीतर संदेह मौजूद था। इस आदमी की बातचीत ने उस संदेह को फिर जगा दिया। वह हमेशा वहां भीतर सोया हुआ था।

हम किसी के भीतर संदेह डाल नहीं सकते, अगर उसके भीतर मौजूद न हो। संदेह डालना असंभव है। संदेह डालना बिलकुल असंभव है, अगर उसके भीतर मौजूद न हो। संदेह भीतर मौजूद हो, बाहर से कोई बात कही जाए, भीतर से संदेह वापस उठ कर खड़ा हो जाएगा, क्योंकि वह प्रतीक्षा कर रहा है बाहर निकलने की, आप उसको दबा कर बिठाए हुए हैं।

सारी दुनिया के धर्म--भारत के धर्म और सारे धर्म--यह चेष्टा करते हैं कि कभी नास्तिक की बात मत सुनना, कभी अधार्मिक की बात मत सुनना, कान बंद कर लेना, कभी ऐसी बात मत सुनना। क्यों? डर किस बात का है? नास्तिक की बात इतनी मजबूत है कि आस्तिक के ज्ञान को मिटा देगी? अगर यह सच है, तो आस्तिक का ज्ञान दो कौड़ी का है।

लेकिन सचाई यह है कि सच में जो आस्तिक है, जो जीवन को जानता है, परमात्मा को पहचानता है, जिसने आत्मा की जरा-सी भी झलक पा ली, उसे दुनिया भर की नास्तिकता भी डगमगा नहीं सकती। लेकिन हम आस्तिक हैं ही नहीं। भीतर हमारे नास्तिक बैठा हुआ है। ऊपर आस्तिकता पतले कागज की तरह घिरी हुई है। असली भीतर आस्तिक नहीं है। तो कोई जब बाहर नास्तिकता की बात करता है, भीतर वह जो सोया हुआ नास्तिक है उठने लगता है और कहता है, ठीक है यह बात।

भारत इसलिए धार्मिक नहीं हो सका कि हमने धर्म को विश्वास पर खड़ा किया, ज्ञान पर नहीं। धर्म खड़ा होना चाहिए ज्ञान पर, विश्वास पर नहीं। तो अगर ठीक धार्मिक मनुष्य चाहिए हो इस देश में, तो हमें जिज्ञासा जगानी चाहिए, इंक्वायरी जगानी चाहिए, विचार जगाना चाहिए, चिंतन-मनन जगाना चाहिए। विश्वास बिलकुल ही छोड़ देना चाहिए। बच्चों को विश्वास की कोई शिक्षा देने की जरूरत नहीं है। शिक्षा दी जानी चाहिए विचार करने की कला, चिंतन करने का ढंग, मनन करने का मार्ग, ध्यान करने की व्यवस्था, ताकि तुम जान सको कि सत्य क्या है। और जिस दिन सत्य की थोड़ी-सी भी झलक मिलती है--एक किरण भी मिल जाए सत्य की--आदमी की जिंदगी दूसरी हो जाती है, वह जिंदगी धार्मिक हो जाती है। विश्वासी आदमी झूठा आदमी है, डिसेप्टिव है वह, आत्मवंचक है। इसलिए सारा मुल्क धोखे में पड़ गया है।

और चौथी बातः अब तक हमें यह समझाया जाता रहा है कि सत्य दूसरे से मिल सकता है--गुरु से मिल सकता है, ज्ञानी से मिल सकता है, ग्रंथ से मिल सकता है, शास्त्र से मिल सकता है।

यह बात बिलकुल ही गलत है। सत्य किसी से किसी दूसरे को नहीं मिल सकता। सत्य खुद ही खोजना पड़ता है। सत्य इतनी सस्ती बात नहीं है कि कोई आपको दे दे। सत्य तो खुद के प्राणों की सारी शक्ति को लगा कर ही खोजना पड़ता है। वह यात्रा खुद ही करनी पड़ती है।

आपकी जगह कोई मर सकता है? आपकी जगह कोई प्रेम कर सकता है? कभी आपने सोचा कि आपकी जगह कोई और प्रेम कर ले और आप प्रेम का आनंद ले लें? कभी आपने सोचा कि कोई दूसरा मर जाए और आपको मृत्यु का अनुभव हो जाए?

यह कैसे हो सकता है! जो आदमी मरेगा, वह मृत्यु का अनुभव करेगा। जो आदमी प्रेम में जाएगा, वह प्रेम का आनंद लेगा।

लेकिन हमने एक बड़ा धोखा दिया। हमने मृत्यु और प्रेम से भी सत्य को सस्ता समझा। हम यह समझते रहे कि सत्य दूसरे को मिल जाएगा और वह हमको दे देगा। महावीर हमको दे देंगे, बुद्ध हमको दे देंगे, राम और कृष्ण हमको दे देंगे।

एक एक कदम

कोई किसी को सत्य नहीं दे सकता है। अगर सत्य दिया जा सकता होता, तो आज तक सारी दुनिया में सबके पास सत्य पहुंच गया होता। क्योंकि महावीर की करुणा इतनी है, बुद्ध का और क्राइस्ट का प्रेम इतना है कि अगर वे दे सकते, तो वह बांट दिया होता। लेकिन नहीं, वह नहीं दिया जा सकता। वह एक-एक आदमी को खुद ही खोजना पड़ता है।

लेकिन हमें अब तक यह सिखाया गया है कि खुद खोजने का कहां सवाल है? गीता में लिखा है, रामायण में उपलब्ध है, उपनिषद में छिपा हुआ है, समयसार में है, बाइबिल में है, कुरान में है। वहां से ले लें। पाठ कर लें, कंठस्थ कर लें सूत्रों को और सत्य मिल जाएगा!

इससे एक झूठा धर्म पैदा हुआ, जो शब्दों का धर्म है, सत्यों का धर्म नहीं है। शास्त्रों से, गुरुओं से शब्द मिल सकते हैं, सत्य नहीं मिल सकता। सत्य तो स्वयं ही खोजना पड़ता है। और एक-एक आदमी को अपने ही ढंग से खोजना पड़ता है, और एक-एक आदमी को अपनी ही पीड़ा से जन्म देना पड़ता है। जैसे मां को प्रसव-पीड़ा से गुजरना पड़ता है ताकि उसका बच्चा पैदा हो सके, ऐसे ही प्रत्येक व्यक्ति को एक साधना से गुजरना पड़ता है ताकि उसका सत्य पैदा हो सके। सत्य उधार और बारोड नहीं है।

लेकिन हमारा मुल्क अब तक यही मानता रहा कि सत्य किताब से मिल सकता है, शास्त्र कंठस्थ कर लेने से मिल सकता है। कृष्ण को मिल चुका, अब हमें खोजने की क्या जरूरत है? अब हम गीता को कंठस्थ कर लें, बस हमें मिल गया।

तो गीता से मिल जाएंगे शब्द, और शब्द हो जाएंगे कंठस्थ, और ऐसा भ्रम पैदा होगा कि मैंने भी जान लिया। लेकिन मैंने बिलकुल नहीं जाना है। गीता के शब्द स्मृति में भर गए हैं, उन्हीं को मैं दोहरा रहा हूं, दोहरा रहा हूं। मैंने क्या जाना है? मेरा अपना अनुभव क्या है? मेरा अपना एक्सपीरिएंस क्या है?

इसलिए इन चार सूत्रों के आधार पर भारत धार्मिक दिखाई पड़ता है और धार्मिक नहीं है। और ये चारों सूत्र बदले जा सकते हैं, तो भारत के जीवन में धर्म के अनुभव की दिशा में एक नई यात्रा का उदघाटन हो सकता है। वह उदघाटन अत्यंत जरूरी है। उस उदघाटन के बिना हमारी कौम का कोई भी भविष्य नहीं है। उस द्वार के खोले बिना हमने जीवन खो दिया है।

चर्च हमारा गिरने के करीब है। वह भवन जिसे हम धर्म कहते थे, सड़-गल चुका है। वह भवन जिसे हमने धर्म समझा था, वहां अब कोई उपासक नहीं जाता है। वह भवन जिसे हम समझे थे कि इससे परमात्मा मिलेगा, उसकी तरफ हमारी पीठ हो गई है। लेकिन हम उस भवन को बदलने को तैयार भी नहीं हैं, नया भवन बनाने के लिए उत्सुक भी नहीं हैं। ऐसी हालतों में हम दोहराते रहेंगे सारी दुनिया के सामने कि हम धार्मिक हैं और हम भली-भांति भीतर जानते हैं कि हम धार्मिक नहीं हैं।

क्या यह स्थिति बदलने जैसी नहीं है? क्या इस स्थिति को ऐसे ही बैठे हुए देखते रहना उचित है? इस प्रश्न पर ही मैं अपनी बात छोड़ देना चाहता हूं। जिनके भीतर भी थोड़ी समझ है, और जिनके भीतर भी थोड़ा जीवन है, और जो थोड़ा सोचते हैं और विचारते हैं, उनके सामने आज एक ही काम है: भारत के प्राण अधार्मिक हो गए हैं, उन्हें धार्मिक कैसे किया जाए?

वे धार्मिक किए जा सकते हैं। थोड़ा ठीक चिंतन और ठीक मार्गों में हम खोज करेंगे, तो भारत की आत्मा धार्मिक हो सकती है। भारत की आत्मा धर्म के लिए प्यासी है, लेकिन झूठे पानी से हम उसे तृप्त करते रहे हैं। प्यास को फिर से जगाना जरूरी है, ताकि हम उस सरोवर को खोज सकें, जहां प्यास बुझ जाती है और उससे मिलन हो जाता है जिसे पा लेने के बाद फिर पा लेने को कुछ भी नहीं बचता, और वह जीवन उपलब्ध हो जाता है जिस जीवन की कोई मृत्यु नहीं, और वह सुवास और सुगंध और वह संगीत हाथ में आ जाता है जिसे कोई मोक्ष कहता है, कोई प्रभु कहता है, कोई किंगडम ऑफ गॉड कहता है, कोई और नाम देता है। प्रत्येक आदमी अधिकारी है उसे पाने का। लेकिन गलत रास्तों से उसे नहीं पाया जा सकता है।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

एक एक कदम

संगठन
और
धर्म

सुबह मैंने आपकी बातें सुनीं। उस संबंध में पहली बात तो यह जान लेनी जरूरी है कि धर्म का कोई भी संगठन नहीं होता है; न हो सकता है। और धर्म के कोई भी संगठन बनाने का परिणाम धर्म को नष्ट करना ही होगा। धर्म नितांत वैयक्तिक बात है, एक-एक व्यक्ति के जीवन में घटित होती है; संगठन और भीड़ से उसका कोई भी संबंध नहीं है।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि और तरह के संगठन नहीं हो सकते हैं। सामाजिक संगठन हो सकते हैं, शैक्षणिक संगठन हो सकते हैं, नैतिक-सांस्कृतिक संगठन हो सकते हैं, राजनैतिक संगठन हो सकते हैं। सिर्फ धार्मिक संगठन नहीं हो सकता है।

यह बात ध्यान में रख लेनी जरूरी है कि अगर मेरे आस-पास इकट्ठे हुए मित्र कोई संगठन करना चाहते हैं, तो वह संगठन धार्मिक नहीं होगा। और उस संगठन में सम्मिलित हो जाने से कोई मनुष्य धार्मिक नहीं हो जाएगा। जैसे एक आदमी हिंदू होने से धार्मिक हो जाता है, मुसलमान होने से धार्मिक हो जाता है, वैसे जीवन जागृति केंद्र का सदस्य होने से कोई धार्मिक नहीं हो जाता।

धार्मिक होना दूसरी ही बात है। उसके लिए किसी संगठन का सदस्य होने की जरूरत नहीं है। बल्कि सच तो यह है कि जो किसी संगठन का--धार्मिक संगठन का--सदस्य है, वह धार्मिक संगठन की सदस्यता उसके धार्मिक होने में निश्चित ही बाधा बनेगी। जो आदमी हिंदू है वह धार्मिक नहीं हो सकता। जो जैन है वह भी धार्मिक नहीं हो सकता। जो मुसलमान है वह भी धार्मिक नहीं हो सकता। क्योंकि संगठन में होने का अर्थ संप्रदाय में होना है। संप्रदाय और धर्म विरोधी बातें हैं। संप्रदाय तोड़ता है, धर्म जोड़ता है।

इसलिए पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि मेरे आस-पास अगर कोई भी संगठन खड़ा किया जाए तो वह संगठन धार्मिक नहीं है। उसे धार्मिक समझ कर खड़ा करना गलत होगा। इसलिए जिन मित्रों ने कहा कि धार्मिक संगठन नहीं हो सकता, उन्होंने बिलकुल ही ठीक कहा है, कभी भी नहीं हो सकता है। लेकिन उनको शायद भ्रांति है कि और तरह के संगठन नहीं हो सकते।

और तरह के संगठन हो सकते हैं। जीवन जागृति केंद्र भी और तरह का संगठन है, धार्मिक संगठन नहीं। इस समाज में इतनी बीमारियां हैं, इतने रोग हैं, इतना उपद्रव है, इतनी कुरूपता है कि जो मनुष्य भी धार्मिक है, वह मनुष्य चुपचाप इस कुरूपता, इस गंदगी, इस समाज की मूर्खता को सहने को तैयार नहीं हो सकता। जो मनुष्य धार्मिक है वह बरदाश्त करने को तैयार नहीं होगा कि यह कुरूप समाज जिंदा रहे और चलता रहे। जिस मनुष्य के जीवन में भी थोड़ी धर्म की किरण आई है वह इस समाज को आमूल बदल देना चाहेगा।

जीवन जागृति केंद्र धार्मिक संगठन नहीं है, लेकिन धार्मिक लोगों का संगठन है सामाजिक परिवर्तन और क्रांति के लिए। इसकी सदस्यता से कोई धार्मिक नहीं हो जाएगा; लेकिन जो लोग चाहते हैं कि समाज को, जीवन को, नीति को, चलती हुई व्यवस्था को, परंपरा को बदला जाए, वे लोग इस संगठन के सदस्य हो सकते हैं और इस संगठन को मजबूत बना सकते हैं। यह संगठन सामाजिक क्रांति का संगठन होगा, धार्मिक नहीं; सोशल रिफॉर्म के लिए; धार्मिक शांति के लिए नहीं, सामाजिक क्रांति के लिए।

यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि यह सामाजिक क्रांति का आंदोलन है। और जो व्यक्ति भी थोड़ा-सा प्रबुद्ध होगा, शांत होगा, जीवन को देखेगा और समझेगा, यह हिंसा होगी उसकी तरफ से कि वह इस समाज को जैसा यह है वैसा ही चलने दे। कोई धार्मिक मनुष्य इस समाज की मौजूदा स्थिति को बरदाश्त नहीं कर सकता है, सिर्फ अधार्मिक लोग ही बरदाश्त कर सकते हैं। वे, जिनके प्राणों में कोई करुणा नहीं है, वे ही समाज में चलती हुई कुरूपता को देख सकते हैं। वे, जिनके जीवन में प्रेम की कोई किरण नहीं है, वे ही घृणा के इतने अंधकार को सह सकते हैं। वे, जिनके भीतर मनुष्यता मर गई है, वे ही अपने चारों तरफ मनुष्यता के मरे हुए रूप के

बीच रहने को राजी हो सकते हैं। या तो धार्मिक आदमी इस समाज को बदलेगा, बदलने की कोशिश करेगा, या अपने को मिटा देगा, लेकिन इसी समाज में रहने की तैयारी उसकी नहीं हो सकती है। तो जीवन जागृति केंद्र एक संगठन होगा--धार्मिक संगठन नहीं, सामाजिक क्रांति, उथल-पुथल के लिए एक संगठन। वह एक आंदोलन होगा।

लेकिन वह आंदोलन इस अर्थों में नहीं, जिस तरह कि मोहम्मद का आंदोलन है कि आदमी मुसलमान हो जाए तो सब हो गया। जो मुसलमान है वह मोक्ष पहुंच जाएगा और जो नहीं है उसके द्वार बंद हो गए। इस तरह का वह संगठन नहीं होगा। उसका मोक्ष से कोई भी संबंध नहीं है। मोक्ष से संबंध संगठन का कभी होता ही नहीं, वह व्यक्ति की निजी बात है।

लेकिन जिन लोगों के जीवन में भी थोड़ी-सी शांति फलित होगी, जिनके जीवन में भी प्रभु का थोड़ा-सा प्रकाश आएगा, क्या वे समाज को ऐसा ही देखते रहेंगे जैसा कि समाज है? यह बरदाश्त के बाहर है। धार्मिक मनुष्य बुनियादी रूप से विद्रोही होगा। और अगर आज तक दुनिया में धार्मिक मनुष्य विद्रोही नहीं हुआ तो उसका एक ही कारण है कि वह मनुष्य धार्मिक ही न रहा होगा। धार्मिक आदमी रिबेलियस होगा ही। उसके जीवन में क्रांति होगी ही।

लेकिन क्रांति तो अकेले नहीं हो सकती, क्रांति के लिए तो संगठन चाहिए; क्योंकि जब हम क्रांति करने चलते हैं तो क्रांति को रोकने वाली जो शक्तियां हैं वे संगठित हैं। उनके खिलाफ एक आदमी का क्या अर्थ है? क्रांति के विरोध में जो प्रतिगामी, जो रिएक्शनरी फोर्सेज हैं वे सब संगठित हैं। उनके खिलाफ एक आदमी का क्या प्रयोजन है? क्या अर्थ है?

जिंदगी में जो लोग गलत हैं वे संगठित खड़े हुए हैं और अच्छा आदमी यह सोच कर कि संगठन की क्या जरूरत है, बुरे आदमियों का साथी और सहयोगी बनता है। यह ध्यान रखना चाहिए, चोर और बदमाश सब संगठित हैं। राजनीतिज्ञ संगठित हैं। जिंदगी को खराब करने वाले सारे लोग संगठित हैं। और अच्छा आदमी सोचता है, संगठन की क्या जरूरत है!

तो फिर इसका एक ही फल होगा कि यह अच्छा आदमी भी--चाहे जानते हुए, चाहे न जानते हुए--बुरे आदमियों का एजेंट सिद्ध होगा। क्योंकि बुरे आदमियों के संगठित रूप को बदलने के लिए अच्छे आदमियों के भी संगठन की अत्यंत अनिवार्य जरूरत है। पर एक बात ध्यान में रखते हुए कि वह संगठन धार्मिक नहीं है, उस संगठन का धर्म से सीधा संबंध नहीं है। धार्मिक लोग उस संगठन में हो सकते हैं, लेकिन उस संगठन की सदस्यता से कोई धार्मिक नहीं होता है। सामाजिक क्रांति की दृष्टि को ध्यान में लेकर एक संगठन अत्यंत जरूरी है।

यह हमेशा से दुर्भाग्य रहा है कि बुरे आदमी सदा से संगठित रहे हैं, अच्छा आदमी हमेशा अकेला खड़ा रहा है। और इसीलिए अच्छा आदमी हार गया, अच्छा आदमी जीत नहीं सका। अच्छा आदमी आगे भी नहीं जीत सकेगा। अच्छे आदमी को भी संगठित होना जरूरी है। बुराई की ताकतें इकट्ठी हैं। उन ताकतों के खिलाफ उतनी ही बड़ी ताकतें खड़ा करना आवश्यक है।

तो मैं धार्मिक संगठन के एकदम विरोध में हूं, लेकिन संगठन के विरोध में नहीं हूं--इस भेद को समझ लेना जरूरी है।

दूसरी बात, यह संगठन क्या चाहेगा? क्या करना चाहता है? क्या इसकी प्रवृत्ति होगी?

समाज की जो जरूरतें हैं उनको ध्यान में लेंगे तो इसकी प्रवृत्ति खयाल में आ सकती है। समाज की पूरी जीवन-व्यवस्था ही रुग्ण है; उसमें आमूल क्रांति की जरूरत है, उसमें बुनियाद से ही पत्थर बदल देने की जरूरत है। जैसे हम आदमी को आज तक ढालते रहे हैं, वह ढालने का ढांचा ही गलत सिद्ध हुआ है। उस ढांचे से अनिवार्यरूपेण बीमारियां पैदा होती हैं। फिर हम एक-एक आदमी को जिम्मेवार ठहराते हैं कि तुम जिम्मेवार हो, जब कि वह आदमी विक्टिम होता है, शिकार होता है, जिम्मेवार नहीं होता। और उस पर हम जिम्मेवारी थोपते रहे हैं पिछले पांच हजार वर्षों से। यह बिलकुल ही आदमी के साथ अन्याय हुआ है।

आदमी गरीब होगा, चोर हो जाना बहुत संभव है। आदमी दीन-हीन होगा, उसका पापी हो जाना बहुत संभव है। जब तक दुनिया में दरिद्रता है, दीन-हीनता है, तब तक हम मनुष्य को सच्चे अर्थों में नैतिक बनाने में समर्थ नहीं हो सकते। इतनी दरिद्रता होगी कि प्राण ही दरिद्रता में डूबे हों तो नीति का स्मरण रखना बहुत मुश्किल है। एक तरफ समाज का सारा धन इकट्ठा हो जाए और समाज के अधिक लोग निर्धन हों और फिर हम उन्हें समझाएं कि तुम धन का लोभ मत करना, तुम धन का मोह मत करना, तुम किसी दूसरे के धन को प्रतिस्पर्धा से मत देखना...।

हम कुछ ऐसी बातें सिखा रहे हैं कि एक घर के एक कोने में सुस्वादु भोजन का ढेर लगा है और भूखे लोग घर के चारों तरफ इकट्ठे हुए हैं, उनकी नाकों में उस भोजन की सुगंध जा रही है, उनकी आंखें उस भोजन को देख रही हैं, और वे भूखे हैं, और उनके पूरे प्राण रोटी मांग रहे हैं और हम उन्हें समझा रहे हैं कि देखो, भूल कर भी कभी भोजन का खयाल मत करना, भोजन का विचार मत करना; दूसरे के भोजन की तरफ देखना भी मत; यह बड़ा पाप है।

समाज की पूरी की पूरी व्यवस्था ऐसी है कि उससे अनीति पैदा होती है। अगर समाज के व्यापक पैमाने पर एक नैतिक जीवन विकसित करना हो--धार्मिक मैं नहीं कह रहा हूं--नैतिक जीवन विकसित करना हो, तो हमें समाज की सारी आमूल धारणा को सोचना-विचारना पड़ेगा। हमें सोचना पड़ेगा सब तरफ।

तो जीवन जागृति केंद्र समाज की आर्थिक व्यवस्था पर भी स्पष्ट दृष्टिकोण लेना चाहेगा। और उस दृष्टिकोण को गांव-गांव, कोने-कोने तक पहुंचाना चाहेगा। समाज की शिक्षा दूषित है, समाज की सारी शिक्षा दूषित है; शिक्षा के नाम पर सिर्फ धोखा होता है। न तो मनुष्य का व्यक्तित्व निर्मित होता है, न उसकी आत्मा विकसित होती है, न उसके प्राणों में कुछ ऐसा फलित होता है जिसे हम जीवन का अर्थ, जीवन की कला, कुछ कह सकें। आदमी बिना कुछ जाने हाथ में डिग्रियां लेकर वापस चला आता है। बिना कुछ हुए घर वापस लौट आता है और जिंदगी का सबसे बहुमूल्य समय शिक्षा के नाम पर नष्ट हो जाता है। जिस समय में कुछ हो सकता था वह बिलकुल ही व्यर्थ नष्ट हो जाता है। जीवन जागृति केंद्र को नई शिक्षा के संबंध में एक स्पष्ट दृष्टि विकसित करनी होगी कि नई शिक्षा कैसी हो।

हमारा परिवार बिलकुल सड़-गल गया है, लेकिन हम उसमें इतने दिन से रह रहे हैं कि हमें पता भी नहीं चल रहा है कि उसकी सब चीजें सड़ गई हैं। कोई दंपति सुखी नहीं है। कोई पिता सुखी नहीं है बेटे से। कोई बेटा सुखी नहीं है बाप से। कोई मां अपने बच्चों से सुखी नहीं है। कोई गुरु खुश नहीं है अपने शिष्यों से। कोई शिष्य अपने गुरुओं से खुश नहीं है। सारा का सारा समाज कुछ ऐसा मालूम पड़ता है कि एक-दूसरे को दुख देने के लिए ही निर्मित हुआ है।

परिवार की आमूल धारणा बदलनी जरूरी है। नए तरह का परिवार विकसित होना चाहिए जहां पिता और बेटे, मां और बेटे, पति और पत्नी जीवन में अधिकतम संतोष उपलब्ध कर सकें। और ऐसा समाज निर्मित हो सकता है, ऐसा परिवार निर्मित हो सकता है। सिर्फ हमने उस संबंध में सोचा नहीं है, विचारा नहीं है। उदाहरण के लिए मैंने कहा कि जीवन की सारी व्यवस्था पर जीवन जागृति केंद्र एक आंदोलन फैलाना चाहेगा। मेरी उस सब संबंध में दृष्टि है।

धर्म के संबंध में मेरी दृष्टि है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि जीवन के और पहलुओं पर मैं नहीं सोचता हूं। मेरी तो अपनी समझ यह है कि जिस व्यक्ति के जीवन में धर्म का थोड़ा-सा भी प्रकाश होगा वह उस प्रकाश के सहारे जीवन के सारे पहलुओं को देखने में समर्थ हो जाता है। धर्म का दीया हाथ में हो तो हम जीवन की सारी समस्याओं को देखने में समर्थ हो जाते हैं। जीवन के प्रत्येक पहलू पर मेरी दृष्टि है। वह मैं आपसे कहना चाहता हूं, पूरे समाज से कह देना चाहता हूं। जीवन जागृति केंद्र उस सारी बात को पहुंचाने का ध्यान लेगा। जीवन का ऐसा कोई पहलू नहीं है जिसमें बदलाहट की जरूरत न आ गई हो। सच तो यह है कि वह सिर्फ ऐतिहासिक जरूरतों से पैदा हो गया है हमारा जीवन, सक्रिय और सचेतन रूप से मनुष्य का समाज निर्मित नहीं हुआ है। अब तक जो समाज निर्मित हुआ है वह बिलकुल अचेतन, ऐतिहासिक प्रक्रिया से निर्मित हो गया

है; सचेष्ट रूप से, विचार करके समाज की कोई भी चीज निर्मित नहीं हुई है। जरूरत है कि हम सचेष्ट होकर जीवन के एक-एक पहलू पर पुनर्विचार करके निर्मित करने का विचार करें। और सब कुछ बदला जा सकता है। अभी इजरायल में उन्होंने पंद्रह वर्षों से एक छोटा-सा प्रयोग किया है। प्रयोग का नाम है किबुत्ज। यह परिवार में एक अत्यंत क्रांतिकारी प्रयोग है। मैं चाहता हूं कि हिंदुस्तान के गांव-गांव में भी वह प्रयोग हो। आने वाले दो सौ वर्षों में जो बच्चे किबुत्ज के प्रयोग से विकसित होंगे वे बिलकुल नए तरह के बच्चे होंगे। किबुत्ज एक व्यवस्था है जहां तीन महीने के बाद बच्चे को गांव के सामूहिक आश्रम में प्रवेश दे दिया जाता है--तीन महीने के बच्चे को। उसे मां-बाप से दूर ही पाला जाता है। मां-बाप मिल सकते हैं--महीने में, पंद्रह दिन में, सप्ताह में, रोज--जब उन्हें सुविधा हो वे जाकर बच्चे को प्यार कर सकते हैं, लेकिन बच्चे का सारा पालन-पोषण सामूहिक कर दिया गया है।

सामूहिक पालन-पोषण के अदभुत परिणाम हुए हैं। सामान्यतया सोचा गया था कि बच्चों का प्रेम इस भांति मां-बाप के प्रति कम हो जाएगा। लेकिन परिणाम यह हुआ है कि किबुत्ज के बच्चे अपने मां-बाप को जितना प्रेम करते हैं, दुनिया का कोई बच्चा कभी नहीं कर सकता। उसका कारण यह है कि उन बच्चों को मां-बाप का प्रेम ही देखने का मौका मिलता है, और तो कुछ भी देखने का मौका नहीं मिलता। मां-बाप जब भी जाते हैं उन बच्चों के पास तो उन्हें हृदय से लगाते हैं, प्रेम करते हैं। जब वे बच्चे घंटे, दो घंटे को घर आते हैं तो मां-बाप प्रेम करते हैं। न मां-बाप को उन पर नाराज होने का मौका है, न क्रोध करने का, न गाली देने का। न उन बच्चों को मौका मिलता है कि बाप मेरी मां के साथ कैसा व्यवहार करता है, मां मेरे बाप के साथ किस तरह के वचन बोलती है--इस सबका उन्हें कुछ भी पता नहीं है।

मां-बाप उन्हें एकदम देवता मालूम होते हैं, क्योंकि जब भी वे आते हैं तब उनको देवता पाते हैं। वे घड़ी, आधा घड़ी को आते हैं। मां-बाप घड़ी, आधा घड़ी को अपने बच्चों से मिलने जाते हैं। बीस वर्ष की उम्र में जब वे वापस लौटेंगे पूरी शिक्षा लेकर तो मां-बाप के संबंध में उनके मन में कोई भी घृणा, कोई भी रोष, कोई भी प्रतिक्रिया, कोई भी रिबेलियन नहीं हो सकता है। उनका जितना प्रेम पाया गया...।

अब तक सोचा जाता था कि मां-बाप से दूर रखने में बच्चों का प्रेम कम हो जाएगा, लेकिन किबुत्ज के प्रयोग ने सिद्ध कर दिया है कि मां-बाप और बच्चों के बीच प्रेम अदभुत रूप से विकसित हुआ। वहां जो बच्चे सामूहिक रहे...।

इसका हमें खयाल ही नहीं है कि छोटे बच्चों को बूढ़ों के साथ पालना एकदम अनैतिक है। छोटे बच्चों की बुद्धि छोटे बच्चों की है, बूढ़ों की बुद्धि बूढ़ों की है। बूढ़ों को जीवन भर का अनुभव है, वे और ढंग से सोचते हैं, बच्चे और ढंग से। और हमारे सभी बच्चों को बूढ़ों के साथ पलना पड़ता है। इसमें कितना अनाचार हो जाता है बच्चों के साथ, इसका हमें हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है। न बूढ़े बच्चों को समझ सकते हैं, न बच्चे बूढ़ों को समझ सकते हैं। बूढ़े दुखी होते हैं कि बच्चे हमें परेशान कर रहे हैं। और बच्चों को हम कितना परेशान करते हैं, इसका हमें कोई हिसाब नहीं है।

किबुत्ज ने कहा कि बूढ़ों और बच्चों को साथ-साथ पालना बच्चे को बचपन से ही पागल बनाने की चेष्टा है। क्योंकि बूढ़े का अपना सोचने का ढंग है। उसका ढंग गलत है, यह नहीं; उसका अपना जीवन का अनुभव है; उसका अपने सोचने का ढंग है; उसकी उम्र के देखने का अपना रास्ता है; छोटे बच्चे की जिंदगी से उसका क्या संबंध है?

तो किबुत्ज कहता है कि एक उम्र के लोगों को एक ही उम्र के लोगों के साथ पालना ही मनोवैज्ञानिक है। तो जिस उम्र के बच्चे हैं वे उसी उम्र के बच्चों के साथ पाले जाएं। और इसका परिणाम यह हुआ है कि किबुत्ज से आए हुए बच्चों में एक ताजगी, एक नयापन, बात ही और, खुशी ही और।

हमारे बच्चे तो बूढ़ों के साथ रह-रह कर उदास हो जाते हैं। इसके पहले कि वे खुश होना सीखें, चारों तरफ उदासी उनको पकड़ लेती है। वे एकदम भयभीत हो जाते हैं, क्योंकि हर चीज में उन्हें लगता है कि वे गलत हैं। पिता किताब पढ़ रहे हैं, गीता पढ़ रहे हैं, और बच्चे को लगता है कि वह शोर कर रहा है तो गलत कर रहा है।

अब बच्चे को कभी खयाल में भी नहीं आता कि गीता पढ़ना क्या इतना उपयोगी हो सकता है कि मेरा शोर करना फिजूल हो! बच्चे के लिए कूदना और शोर करना इतना सार्थक है कि उसकी कल्पना के बाहर है कि आप एक किताब लेकर बैठे हैं तो कोई बहुत बड़ा काम कर रहे हैं कि हम शोर न करें। हर चीज धीरे-धीरे उसको पता चल जाती है कि वह गलत है।

तो हम हर बच्चे को गिल्टी और अपराधी बना देते हैं। बचपन से ही उसे लगने लगता है कि जो मैं करता हूं वह गलत है। शोर करता हूं, गलत है; खेलता हूं, गलत है; दौड़ता हूं, गलत है; झाड़ पर चढ़ता हूं, गलत है; नदी में कूदता हूं, गलत है; कपड़े पहने हुए वर्षा में खड़ा होता हूं, गलत है। मैं जो भी करता हूं, गलत है। इसका इकट्ठा परिणाम होता है कि मैं गलत आदमी हूं।

हम अपराध ही पैदा कर रहे हैं बचपन से। और उसका कुल कारण यह है कि बच्चों को उनकी भिन्न उम्र के लोगों के साथ पाला जा रहा है। किबुत्ज में उन्होंने व्यवस्था की है कि बच्चे एक उम्र के बच्चों के साथ पलें। उनको संभालने के लिए भी उनसे थोड़ी ही ज्यादा उम्र के बच्चे हों, बहुत बड़ी उम्र के लोग नहीं। बड़ी उम्र के लोग कोनों में और दूर खड़े रहें। वे इतना ही ध्यान रखें तो काफी है कि बच्चे कोई अपने को आत्म-हानि न पहुंचा लें। बस इससे ज्यादा ध्यान रखने की कोई जरूरत नहीं है।

मेरे एक मित्र एक किबुत्ज स्कूल में गए और वह देख कर दंग रह गए! बच्चों का खाना हो रहा था, और उन्होंने कहा कि मैंने जिंदगी में पहली दफा अनुभव किया कि खाना बच्चों का ऐसा होना चाहिए। पचास बच्चे थे। कुछ बच्चे मेज पर नाच रहे हैं--उसी पर जिस पर कि खाना चल रहा है, कुछ बच्चे तंबूरा बजा रहे हैं, एक बच्चा ट्विस्ट करके डांस कर रहा है, एक लड़की गीत गा रही है। सारा खेल चल रहा है, बीच में खाना भी चल रहा है, नाच भी चल रहा है। उन्होंने कहा कि वह दो-ढाई घंटे तक चलता रहा, वह खाना और वह नाच। मैंने पूछा, क्या यह रोज होता है? उन्होंने कहा, खाना और बिना नाचे और बिना गाए कैसे हो सकता है! उन्होंने कहा कि मैं दो घंटे तक देख कर दंग रह गया! वे बच्चे इतने खुश थे!

लेकिन यह बूढ़ों के साथ तो खाने में नहीं हो सकता। यह असंभव है। हमारे बच्चे के खुशी जानने के पहले उनकी खुशी नष्ट हो जाती है। उनको बच्चे की तरह पाला ही नहीं गया।

तो मेरी दृष्टि है, बच्चे से लेकर बूढ़े तक, आर्थिक व्यवस्था से लेकर राजनीति तक, शिक्षा, समाज, परिवार, इस सारे को कैसे रूपांतरित किया जाए। और उसके लिए एक संगठन की जरूरत है। वह धार्मिक संगठन नहीं है।

इस पर तो विस्तार में आपसे बात नहीं कर सकूंगा। इस पर तो एक अलग कैंप लेने का विचार चलता है जहां मैं समाज के सारे अंगों को कैसे बदला जाए, उस पर अलग से आपसे पूरी बात कर सकूं।

दूसरी बात, कुछ बातें हमें मान कर चलनी चाहिए। जैसे, जिस समाज में हम हैं वह रुग्ण है। इसलिए हम अगर किसी संगठन में यह शर्त बना देते हैं कि स्वस्थ लोग ही उस संगठन के सदस्य हो सकेंगे तो वह संगठन कभी बनेगा नहीं। यह वैसे ही है जैसे कोई अस्पताल एक तख्ती लगा दे दरवाजे पर कि सिर्फ वे ही लोग अस्पताल में भर्ती हो सकते हैं जो स्वस्थ होंगे। तो उस अस्पताल में कोई भर्ती नहीं होगा, क्योंकि पहली तो बात यह कि अस्पताल की जरूरत ही नहीं रह जाती। दूसरी बात यह कि अस्पताल में आदमी तभी जाता है जब वह बीमार है।

तो अगर हम इस तरह की शर्तें और कंडीशंस बनाएं कि निरहंकारी लोग संगठन में आएं, जिन्हें मान, पद-प्रतिष्ठा का कोई सवाल नहीं है वे संगठन में आएं, जिन्हें धनी और निर्धन के बीच कोई फर्क नहीं है वे संगठन में आएं, तो आप गलत शर्तें लगा रहे हैं। मैं यह मानता हूं कि लोग संगठन में रह जाने के बाद इस भांति के हो जाने चाहिए, लेकिन यह संगठन में आने की शर्त नहीं हो सकती। जो आदमी संगठन में रह जाए वह ऐसा हो जाना चाहिए, लेकिन ऐसा हो तब संगठन हम खड़ा करेंगे या संगठन बनाएंगे, तो हम पागल हैं! फिर संगठन बनाने की कोई जरूरत नहीं रह जाती।

यह हमें मान कर चलना पड़ेगा कि संगठन खड़ा होगा तो आदमी की बीमारियों के साथ शुरू होगा। इस बात को स्वीकार करके चलना पड़ेगा कि आदमी में बीमारियां हैं। अब उन बीमारियों को कितना बचाया जा सकता

है, उसका ध्यान रखना जरूरी है; कितना दूर किया जा सकता है, उसके उपाय करने जरूरी हैं। और अंतिम लक्ष्य ध्यान में होना चाहिए कि वह दूर हो जाए।
कैसे दूर होगा? सामान्य मनुष्य की सारी क्रियाएं अहंकार से प्रेरित होती हैं। यह तो परम धर्म की अनुभूति पर उपलब्ध होता है कि अहंकार खो जाता है। तब सारी क्रियाएं निरहंकार हो जाती हैं। लेकिन उसके पहले यह नहीं होता।
तब क्या रास्ता है? लेकिन अहंकारग्रस्त मनुष्य भी अच्छा काम कर सकता है और अहंकारग्रस्त मनुष्य बुरा काम भी कर सकता है। अच्छे काम के साथ उसके अहंकार को जोड़ा जा सकता है और बुरे काम के साथ भी जोड़ा जा सकता है। निश्चित ही, परम अर्थों में अच्छा काम तभी होता है जब अहंकार शून्य हो जाता है। लेकिन वह पहली शर्त नहीं हो सकती किसी संगठन की। जब भी कोई सामाजिक जीवन और संगठना खड़ी करनी हो तो यह मान कर चलना होता है कि आदमी के रोग को हम स्वीकार करते हैं। उस रोग का अधिकतम शुभ के लिए हम प्रयोग करने की कोशिश करेंगे।
अब जैसे यही सवाल है--कुछ लोग पचास रुपए में ठहरे हुए हैं, कुछ लोग तीस रुपए में ठहरे हुए हैं। इसमें कई कारण हो सकते हैं। और जैसा समाज है, वर्ग विभाजित, उसमें यह असंभव है कि इस पूरे वर्ग विभाजित समाज में आप एक छोटा-सा ओएसिस बनाना चाहें जहां कि वर्ग विभाजन न हो। क्योंकि यहां जो लोग आएंगे वे वर्ग विभाजित समाज से आएंगे। उनके सारे जीवन का सोचने का ढांचा वर्ग विभाजन का है। इस ढांचे से वे लोग यहां आएंगे तीन दिन के लिए। अगर हम यह शर्त रख लें कि यहां वर्ग विभाजित भाव छोड़ देना पड़ेगा तो ही प्रवेश पा सकते हैं, तो प्रवेश ही नहीं पाया जा सकता है।
वर्ग विभाजित समाज है। समाज क्लासेस में बंटा हुआ है। वह जो आदमी यहां आ रहा है वह उस समाज से आ रहा है। उसके प्राणों में गहरे वह वर्ग बैठ गया है। उस वर्ग को निकालना है। वर्ग को निकालने की चेष्टा करनी है। लेकिन वर्ग न हो, यह योग्यता नहीं बनाई जा सकती, पहली क्वालीफिकेशन, कि तब उसे प्रवेश मिलेगा। पचास रुपए वाला आदमी है, वह पचास रुपए वाला आदमी पचास रुपए की सुविधा मांगता है; उसकी अपनी आदतें हैं। पचास रुपए की सुविधा उसे न दी जाए तो वह नहीं आएगा। मुझे पता चला कि बंबई से और दो-चार सौ लोग आने वाले थे, लेकिन पचास रुपए वाला हिस्सा खत्म हो गया, वे नहीं आ सके। अब यह जो आदमी है, यह पचास रुपए में ठहरता है।
मैं नहीं कहता कि यह विभाजन खत्म कर दिया जाए, मैं तो यह कहता हूं विभाजन और थोड़ा बड़ा किया जाए। सौ रुपए का भी वर्ग हो, अस्सी का भी हो, सत्तर का भी हो, दस का भी हो, पांच का भी हो, शून्य का भी हो। जैसा एक मित्र ने कहा कि कुछ लोग हैं जो कुछ भी नहीं दे सकते। जो कुछ भी नहीं दे सकते उनको लाने का एक ही उपाय है कि जिन्हें डेढ़ सौ रुपया देने में मजा हो सकता है उनके लिए डेढ़ सौ का वर्ग भी हो। इसके अलावा कोई रास्ता नहीं है। तो शून्य वाला भी लाया जा सकता है।
कुछ को सिर्फ डेढ़ सौ रुपए देने में ही सुख उपलब्ध होता है कि वे डेढ़ सौ वाले वर्ग में ठहरे हुए हैं। उनको इतना सुख लेने दिया जाए। यह तो पीछे की बात होगी कि हमारी यहां की व्यवस्था और विचार और चिंतना और व्यवहार से उनको पता चले कि वे बेवकूफ थे, उन्होंने भूल की। यह तो यहां केंद्र का जो व्यवहार होगा शून्य रुपया देने वाले से, वह वही होगा जो डेढ़ सौ रुपए देने वाले से होगा।
व्यवहार मैं कह रहा हूं--खाट नहीं कह रहा हूं, तकिया नहीं कह रहा हूं। क्योंकि ठीक है कि डेढ़ सौ रुपए वाले के लिए आपको दो अच्छे तकिए देने पड़ेंगे; वे देने चाहिए। लेकिन व्यवहार! यहां केंद्र का जो कार्यकर्ता है वह डेढ़ सौ रुपये वाले से ज्यादा सम्मान से बोलेगा, तो गलती होती है, तो भूल होती है। जिसने एक भी पैसा नहीं दिया है उससे अगर वह असम्मान से बोलता है तो भूल होती है। तो हम वर्ग पैदा कर रहे हैं फिर। ये तो वर्ग हैं--सौ रुपए, डेढ़ सौ रुपए वाले--हम पैदा नहीं कर रहे; उसी वर्ग से यह समाज आ रहा है। हम वर्ग मिटाने के लिए एक नया समाज खड़ा करना चाहते हैं। यहां जो व्यवहार होगा, उस तल पर रत्ती भर का फासला नहीं होना चाहिए।

लेकिन यह फासला होगा कि डेढ़ सौ रुपए वाला मेरे बंगले के पास ठहरेगा। यह व्यवहार का फासला नहीं है। वह डेढ़ सौ रुपए भी दे और गांव में भी ठहरे, और जो कुछ भी न दे वह मेरे पास ठहरे, तो यह किस अर्थ में न्यायपूर्ण होगा? उसे ठहरने दें यहां। उसके यहां ठहरने से कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि जब वह मुझसे मिलने आएगा तब उसको पता चलेगा कि मुझसे मिलने जो सौ कदम पैदल चल कर आया है उसमें और वह जो दो कदम चल कर आया है, मुझसे मिलने में कोई फर्क नहीं है।

और फिर हमें नई धारणा विकसित करनी चाहिए कि डेढ़ सौ रुपए वाले बंगले में वे लोग ठहरे हुए हैं जो उतने स्वस्थ नहीं हैं कि दस रुपए वाली जगह में ठहर सकें। वह हमें विकसित करनी चाहिए धारणा। वह जो पचास रुपए वाले में ठहरा हुआ है वह अस्वस्थ आदमी है, तीस रुपए वाला आदमी ज्यादा स्वस्थ है, वह तीस रुपए में भी गुजारा करता है। हमें धारणा, वैल्यूज बदलनी है। डेढ़ सौ रुपए, सौ रुपए से आप नहीं छुटकारा पा सकते हैं। हमें यह धारणा बनानी चाहिए कि तीस रुपए वाले में जो ठहरा है वह ज्यादा स्वस्थ आदमी है, पचास में जो ठहरा है वह बीमार है। डेढ़ सौ वाला और भी बीमार है, उसके लिए ज्यादा सुविधा की व्यवस्था के आयोजन की जरूरत है। और बीमार आदमी के प्रति हमारी दया होनी चाहिए, घृणा नहीं होनी चाहिए। स्वभावतः, बीमार आदमी के प्रति दया ही होती है, घृणा का क्या कारण है! हमें धारणा बदलनी चाहिए, वैल्युएशन। हमारे सोचने और वैल्यूज का फर्क होना चाहिए।

इसलिए मुझे खयाल आता है कि केंद्र के मित्रों ने जो वर्ग के नाम रखे हैं वह 'ए' क्लास तो तीस रुपए वालों के लिए शायद रखिए, 'सी' क्लास पचास रुपए वालों के लिए रखिए। वह थर्ड क्लास में पचास रुपए वाला है, वह फर्स्ट क्लास में है नहीं। होना भी यह चाहिए। होना भी यह चाहिए कि हम दृष्टिकोण बदलें कि पचास रुपए वाले को भी खयाल हो कि पचास रुपए वाले में ठहरना थोड़ा दया के पात्र बनना है। तीस रुपए में ठहरने वाले को लगता हो कि वह ज्यादा स्वस्थ आदमी है। सौ आदमी के साथ जो ठहर सकता है वह आदमी ज्यादा सामाजिक है। जो कहता है कि मैं अकेले ही ठहरूंगा, दूसरे के साथ सो भी नहीं सकता रात, यह आदमी रुग्ण है। इसकी व्यवस्था हमें करनी चाहिए। और हम उपाय करेंगे कि धीरे-धीरे यह सौ के साथ ठहर सके। लेकिन हम यह शर्त लगा दें कि नहीं, यहां तो एक ही वर्ग होगा, तो हम सिर्फ इसको रुकावट डाल रहे हैं।

और बड़े मजे की बात यह है कि जिसको हम रुकावट डाल रहे हैं वह उसके लिए भी सहारा बनता जो कि नहीं आ सक रहा है। आपको शायद अंदाज नहीं, जिन लोगों से तीस रुपए की व्यवस्था की गई है, तीस रुपए में उनका खर्च हो नहीं रहा है। उनका खर्च कोई पैंतीस और सैंतीस के करीब पड़ेगा। वे सात रुपए पचास रुपए वाला चुका रहा है। पचास का खर्च नहीं है। खर्च कोई चालीस के करीब है। वे दस रुपए जो ज्यादा हैं पचास रुपए वाले पर, वे चालीस वाले को तीस किए जा सकें इसलिए हैं। लेकिन आदमी की बुद्धि बड़ी अजीब है। उसके लिए इंतजाम किया जाए तो वह परेशान होता है कि मुझे तीस का हिस्सा बना दिया। न इंतजाम किया जाए तो चालीस देने की उसकी तैयारी नहीं है। और जो आदमी उसके लिए दस रुपए चुका रहा है वह आदमी घृणा का पात्र हो रहा है।

फिर यह समाज आपका, इसका जिम्मा न तो जीवन जागृति केंद्र पर है न मुझ पर है। यह आपके सारे बाप-दादों पर है; पांच हजार साल में जो समाज उन्होंने पैदा किया है वह बेवकूफी से भरा हुआ है। आज तो समाज को स्वीकार करके चलना पड़ेगा--उसमें बदलाहट करनी है तो भी।

लेकिन यहां केंद्र के मित्रों को व्यवहार में जरूर बहुत ध्यान रखने की जरूरत है। उस तल पर हमारे मन में धन की कोई स्वीकृति नहीं होनी चाहिए, जरा भी नहीं होनी चाहिए। इसका मतलब यह नहीं कि धन का अपमान होना चाहिए। क्योंकि हमारी बुद्धि इसी तरह काम करती है, या तो हम धन को आदर देते हैं या अपमान करते हैं। बस दो के बीच हम डोलते हैं। धन की सहज स्वीकृति होनी चाहिए। धन का मूल्य है। धन की शक्ति है। और गलत हैं वे लोग जो समझते हों कि धन का कोई मूल्य नहीं है और कोई शक्ति नहीं है। धन का बहुत मूल्य है और बहुत शक्ति है। लेकिन उस कारण कोई मनुष्य सम्मानित नहीं होता। मनुष्यता धन से बहुत बड़ी बात है। खाट धन से मिलती है, और तकिए भी धन से मिलते हैं, और मकान भी धन से मिलता है, और

भोजन भी धन से मिलता है। मनुष्यता धन से नहीं मिलती। तो तकियों, खटियों और गद्दियों में तो फर्क होगा, लेकिन मनुष्यता के आदर में फर्क नहीं होना चाहिए।

और जब धीरे-धीरे इस केंद्र के मित्र एक हवा पैदा कर लेंगे कि यहां मनुष्यता में कोई फर्क नहीं है तो हम वह वक्त भी ले आएंगे कि हम कहेंगे कि जो जितना दे सके वह उतना दे--तीस और सौ के बीच जो जितना दे सके वह उतना दे दे या दस और सौ के बीच जितना दे सके उतना दे दे। जो जितना दे सके उतना दे और जो जितनी सुविधा में रहना चाहे उतनी सुविधा लिख कर दे दे। वह एक धीरे से विकास की बात है, कि आज से पांच साल के बाद हम यह कर सकेंगे कि दस से और सौ तक जिसको जितना देना हो उतना दे दे, और जितनी उसकी जरूरत हो उतनी मांग कर ले। हो सकता है दस रुपए देने वाला बीमार हो और उसे सौ रुपए की व्यवस्था की जरूरत हो, लेकिन वह सौ न दे सकता हो। और यह भी हो सकता है कि सौ देने वाला सौ दे सकता हो और बीमार न हो और दस रुपए की व्यवस्था में रह सकता हो। वह प्रेमपूर्ण हवा हम धीरे-धीरे पैदा कर सकते हैं, लेकिन वह बुनियादी शर्त नहीं बनाई जा सकती, वह पहली योग्यता नहीं बनाई जा सकती। वह हमारे हवा और निर्माण की बात है।

इसी भांति जीवन जागृति केंद्र के मित्र और कार्यकर्ता एकदम से आज प्रतियोगिता से मुक्त नहीं हो जाएंगे। लेकिन प्रतियोगिता से मुक्त हो सकते हैं, यह लक्ष्य रखा जा सकता है। लेकिन इसे भी सीधा लक्ष्य बनाने की जरूरत नहीं है। मेरी दृष्टि में, नकारात्मक लक्ष्य कभी भी नहीं बनाने चाहिए। ध्यान होना चाहिए कि हमारा प्रेम विकसित हो। जितना प्रेम विकसित होगा, प्रतियोगिता उतनी ही कम हो जाती है।

शायद आपको यह पता ही न हो कि जो आदमी प्रतियोगिता की मांग करता है, वह क्यों मांग करता है। यह आपको पता है? एक आदमी कहता है कि मुझे पहला स्थान चाहिए, मैं दूसरे स्थान पर खड़ा होने को राजी नहीं हूं। लेकिन क्या आपने कभी सोचा कि कोई आदमी पहले स्थान पर खड़ा क्यों होना चाहता है?

शायद आपने खयाल भी न किया होगा, जिस आदमी को जीवन में प्रेम नहीं मिलता वही आदमी प्रथम होने की दौड़ में पड़ता है। क्योंकि प्रेम में तो प्रत्येक व्यक्ति तत्काल प्रथम हो जाता है। जिसको भी मैं प्रेम दूंगा वह प्रथम हो गया। अगर आपने मुझे प्रेम दिया तो मैं प्रथम हो गया, इस जगत में मैं द्वितीय नहीं रहा। जिस आदमी को प्रेम नहीं मिलता जीवन में और जो न प्रेम दे पाता है और न ले पाता है, वह आदमी प्रेम की कमी प्रतियोगिता से पूरी करता है। काम्पिटीशन जो है वह सब्स्टीटयूट है, प्रतियोगिता जो है वह पूरक है। जिसको प्रेम नहीं मिला वह फिर प्रतियोगी बन जाता है। फिर वह कहता है, मुझे किसी तरह प्रथम होना है।

अगर मैं एक लड़की को प्रेम करूं तो अनजाने वह लड़की यह अनुभव करेगी कि उससे ज्यादा सुंदर इस पृथ्वी पर कोई स्त्री नहीं है। बस मेरा प्रेम उसको यह खयाल दिला देगा कि उससे सुंदर, उससे श्रेष्ठ कोई स्त्री नहीं है। अगर मुझे कोई प्रेम करे तो मुझे यह खयाल पैदा हो जाएगा उसके प्रेम के कारण, उसकी आंखों के कारण, उसके हाथ के स्पर्श से कि मेरे जैसा पुरुष इस जगत में कोई भी नहीं है। प्रेम प्रत्येक व्यक्ति को प्रथम बना देता है। जिस पर प्रेम की नजर गिरती है वह प्रथम हो जाता है।

तो जिनके जीवन में प्रेम नहीं हो पाता, वे बेचारे प्रथम होने की कोशिश करते हैं। इसलिए प्रतियोगिता प्रश्न नहीं है, प्रश्न हमेशा प्रेम है। जिस आदमी के जीवन में प्रेम फलित होता है उसे खयाल ही भूल जाता है कि वह प्रथम आए। प्रथम आने का सवाल ही समाप्त हो जाता है। प्रेम प्रथम बना देता है प्रत्येक को।

तो यह सवाल नहीं है कि प्रतियोगिता छोड़ें। वह मेरी दृष्टि नहीं है। मेरी दृष्टि यह है कि केंद्र के मित्र कितने प्रेमपूर्ण हो सकें, उस दिशा में प्रयास करना है। वे जितने प्रेमपूर्ण होते चले जाएंगे उतनी ही प्रतियोगिता क्षीण होती चली जाएगी। प्रतियोगिता केवल बीमारी है; प्रेम के अभाव से पैदा होती है। इसलिए प्रतियोगिता मिटानी है, यह बात ही गलत है। प्रतियोगिता कभी नहीं मिटती जब तक प्रेम नहीं बढ़ता।

इस दुनिया में इतनी प्रतियोगिता है, क्योंकि प्रेम बिलकुल नहीं है। और यह रहेगी प्रतियोगिता। एक कोने से मिटाइएगा, दूसरे कोने से शुरू हो जाएगी। इधर से दबाइएगा, वहां से निकलने लगेगी। क्योंकि बुनियादी सवाल प्रतियोगिता नहीं है; प्रेम कैसे विकसित हो, उस पर जोर देना है। और इस पूरी संगठना को प्रेम पर ही

खड़ा करना है। प्रेम के सूत्र हैं, वह मैं आपसे धीरे-धीरे बात करता हूं अनेक बार कि प्रेम कैसे विकसित हो। इसी में छोटी-मोटी थोड़ी-सी बातें और मुझसे सुबह हुई हैं, वे भी मैं आपसे कहूं।

ऐसा रोज होता है। मेरे आस-पास कार्यकर्ताओं का एक वर्ग इकट्ठा होगा ही। जरूरी भी है कि इकट्ठा हो। न इकट्ठा हो तो मेरा जीना ही मुश्किल हो जाए। सुबह से उठता हूं--उठा और रात सोया, तब तक एक क्षण का भी विश्राम मुझे नहीं है। नहीं हो सकता, मैं भी जानता हूं कि विश्राम लेने जैसा समय भी नहीं है। इतनी परेशानी में आदमी है कि विश्राम क्या लेना! लेकिन अगर काम भी करना हो तो विश्राम जरूरी है, और किसी अर्थ में नहीं। जो मित्र मुझे मिलने आते हैं उनको तो पता भी नहीं होता।

अभी बनारस में एक दिन बोल कर मैं लौटा--रात को कोई दस बजे। और घर पर आठ-दस आदमी इकट्ठे हैं। सुबह से मैं बोल रहा हूं, रात दस बजे लौटा हूं कि अब जाकर सो जाऊंगा, कमरे पर आठ-दस लोग इकट्ठे हैं। उनको पता भी नहीं। उनका कोई कसूर भी नहीं। उन्हें कुछ बातें पूछनी हैं। वे बहुत प्रेम से मिलने आए हैं। वह अपनी बातें उन्होंने शुरू कर दीं। वे साढ़े बारह बजे तक बात किए चले जा रहे हैं।

अब घर के जो मेरे होस्ट हैं, वे परेशान इधर-उधर घूम रहे हैं। वे बार-बार इशारा करते हैं कि अब इनको उठाऊं, लेकिन वे तो बातचीत में इतने तल्लीन हैं। और उनकी बातचीत उपयोगी है; अर्थपूर्ण है; उनके जीवन की समस्या है। कहां वे खयाल रखें कि अब मुझे सो जाना चाहिए। एक बजे जाकर उनको आखिर कहना पड़ा। कहा तो वे दुखी हुए, और कहा कि हम छह महीने से राह देख रहे हैं आपके आने की। और कल सुबह तो आप चले जाएंगे। क्या यह नहीं हो सकता कि आज आप हमारे लिए न सोएं? मैंने कहा कि यह हो सकता है; लेकिन यह कितने दिन चल सकेगा? यह हो सकता है, आज मैं नहीं सोऊंगा, कल मैं नहीं सोऊंगा, लेकिन यह कितने दिन चल सकता है?

अभी एक दिन एक मीटिंग थी आठ बजे। सात बजे मैं थका-मांदा लौटा और सो गया आकर, कि आठ बजे की मीटिंग में जाना है। एक मित्र मिलने आए, वह मित्र यहां हैं। तो मेरे छोटे भाई ने उनको कह दिया कि नहीं, वह तो नहीं मिल सकेंगे, आप आठ बजे मीटिंग में आ जाएं। वह बेचारे महीनों से आने के खयाल में होंगे। उनको बहुत दुख हुआ। वह रोते हुए घर लौटे। मुझे कल ही पता चला। उनकी तरफ से कोई भी कसूर नहीं है। उनको कुछ भी पता नहीं, वह इतने प्रेम से छह महीने में साहस जुटा कर मिलने आए। न मालूम कितना भाव लेकर आए होंगे! न मालूम क्या कहने आए होंगे! और किसी ने कह दिया कि नहीं, अभी नहीं मिल सकते। इसमें गलती किसकी है?

मैं मानता हूं, कार्यकर्ता की ही गलती है सदा। क्योंकि जो आया है, उसकी तो गलती नहीं है। कार्यकर्ता की सदा गलती है, क्योंकि इसी बात को थोड़े भिन्न ढंग से कहा जा सकता था, यह बात थोड़ी प्रेमपूर्ण हो सकती थी। इस बात के कहने में कि अभी नहीं मिल सकते हैं, आप मीटिंग में आठ बजे पहुंच जाएं, मेरा तो ध्यान रखा गया, लेकिन जो मिलने आया था उसका कोई भी ध्यान नहीं रखा गया। यह भूल हो गई। यह एकदम भूल हो गई। मुझसे भी ज्यादा ध्यान उसका रखा जाना जरूरी है जो मुझसे मिलने आया है; क्योंकि न मालूम कितनी आकांक्षा, न मालूम कितने खयाल, न मालूम कितना विचार लेकर वह आया है। इस बात को ऐसा भी तो कहा जा सकता था कि मैं दिन भर से थका हुआ आया हूं, अभी लेट गया हूं। अगर आप कहें तो उठा दूं। आप सोच लें!

मैं नहीं सोचता कि जो आदमी मुझसे नहीं मिलने के कारण रोता हुआ घर लौटा वह मुझे उठाने के लिए राजी होता, यह नहीं हो सकता। यह असंभव था। यह असंभव था, अगर जिन्होंने उनको कहा था, यह कहा होता कि वे सोए हैं दिन भर से थके हुए आकर और आठ बजे मीटिंग में फिर जाना है, थोड़ी तकलीफ होगी; आप कहें तो मैं उठा दूं। तो मैं नहीं मानता हूं कि वह मित्र जो रोते हुए लौटे थे, इतने भाव से भरे आए थे, वह इतनी भी कृपा मुझ पर न दिखाते। वह मुझे...तब लेकिन वह रोते हुए नहीं लौटते, तब वह खुश लौट सकते थे।

लेकिन कार्यकर्ता की धीरे-धीरे स्थिति एक रूटीन की हो जाती है। उसको समझाने-बुझाने का खयाल भी नहीं रह जाता। उसकी भी तकलीफ है। एक को हो तो वह समझाए, उसे दिन में कई लोगों को यही बात कहनी है।

लेकिन कार्य करने का अर्थ ही यह है कि हम बृहत्तर मनुष्य समाज से संबंधित हो रहे हैं, हम अनेक लोगों से संबंधित हो रहे हैं। और हम अनेक लोगों के प्रति प्रति बार प्रेमपूर्ण हो सकें तो ही हमारे कार्य करने की कुशलता, कला और सफलता है।

तो जीवन जागृति केंद्र के मित्रों को मेरा ध्यान तो रखना ही है, लेकिन मुझसे भी ज्यादा ध्यान उन मित्रों का रखना है जो मुझसे मिलने आएंगे। अगर कभी रोकना भी पड़े तो उस रोकने में सदा उन पर ही छोड़ देना चाहिए। और अगर वह छोड़ने को राजी न हों तो मेरी फिक्र छोड़ देनी चाहिए। मुझे थोड़ी तकलीफ होगी, उसकी चिंता नहीं लेनी चाहिए, लेकिन किसी आदमी को दुखी करके लौटाना एकदम गलत है। अगर उसे खुशी से लौटा सकते हों तो ठीक, नहीं तो मत लौटाइए। मेरी तकलीफ का उतना सवाल नहीं है, उसकी खुशी ज्यादा कीमती है। आखिर मैं जो श्रम भी कर रहा हूं वह इसीलिए कि कोई खुश हो सके। अगर उसकी खुशी ही खोती हो तो मेरे श्रम का कोई अर्थ नहीं रह जाता। एक भी आदमी अगर असंतुष्ट लौटता है मेरे पास से, तो उसका पाप मेरे ऊपर ही लगता है। यह मेरे मित्रों को ध्यान में ले लेना चाहिए।

उनकी तकलीफ मैं समझता हूं, उनकी अड़चन मैं समझता हूं। हर आदमी आकर प्रवेश करना चाहता है, बात करना चाहता है, घंटों समय लेना चाहता है। वे कहां से इतना समय लाएं, समय सीमित है। उनको दो मिनट में किसी को कहना पड़ता है कि अब आप जाइए, क्योंकि पचास लोग और मिलने वाले बैठे हुए हैं। और समय तो सीमित है। दो मिनट में किसी को भी मिल कर जाने में कष्ट होता है। लेकिन मेरी अपनी समझ यह है कि दो मिनट में भी खुशी से कोई मिल कर जा सकता है। और उसकी पूरी की पूरी साइंस व्यवहार की कार्यकर्ता को सीख लेनी जरूरी है। तो इधर मैं सोच रहा हूं कि कार्यकर्ताओं का एक छोटा शिविर तीन-चार दिन के लिए लूं, जहां उनसे इस संबंध में सारी बात कर सकूं। एक छोटे-से शब्द से सब कुछ फर्क पड़ जाता है। छोटे-से व्यवहार से सब कुछ फर्क पड़ जाता है। एक हाथ के छोटे-से स्पर्श से सब कुछ फर्क पड़ जाता है।

हमने कैसे...मेरे मित्र एक मेरे साथ थे किसी गांव में। उनके जाने पर पीछे कुछ मित्रों ने मुझे आकर शिकायत की कि वह हमारा हाथ पकड़ कर हमको ऐसा ले जाते हैं कि जैसे हमें निकाल रहे हों। किसी को हम इस ढंग से भी ले जा सकते हैं कि निकाल रहे हैं! और इस ढंग से तो चोट पहुंच जाएगी। हम इस ढंग से भी बोल सकते हैं...।

अभी दो लोग बंबई से सिर्फ इसलिए गए, परसों जबलपुर पहुंचे मुझसे मिलने, सिर्फ शिकायत करने। पति और पत्नी जबलपुर पहुंचे बंबई से कि हमको मिलने नहीं दिया गया बंबई में, और हमें धक्के देकर कहा कि जाओ-जाओ अभी नहीं मिल सकते। तो हमें भारी सदमा पहुंचा कि हम मनुष्य नहीं हैं क्या कि हमें बिलकुल जानवर की तरह धक्का देते हैं!

कठिन है यह बात। मैं जानता हूं कि कार्यकर्ता की कितनी तकलीफ है! वह दिन भर में घबड़ा जाता है सुबह से सांझ तक; वह भूल जाता है। लेकिन इस भूल जाने में फिर वह कार्यकर्ता नहीं रह जाता। उसे अत्यंत विनम्र होना पड़ेगा; अत्यंत प्रेमपूर्ण होना पड़ेगा। और एक बात ध्यान में ले लेनी चाहिए, दूसरे को दुख देकर अगर मेरा सुख बचाया जा रहा हो तो उस सुख को नहीं बचाना है। उसकी फिक्र छोड़ दें। उसकी बिलकुल फिक्र छोड़ दें। दूसरे के सुखी रहते हुए अगर मेरी सुविधा जुटाई जा सकती है तो ही जुटानी है; अन्यथा नहीं जुटानी है। इसको ध्यान में रख लेंगे तो फर्क पड़ेगा। एक भी व्यक्ति...और एक-एक व्यक्ति की कितनी कीमत है, हमें कुछ पता नहीं है। एक-एक आदमी अनूठा है। एक अदना आदमी आता है, अपरिचित आदमी--वह क्या है, क्या हो सकता है, क्या कर सकता है, कुछ भी पता नहीं। उसके मन को चोट देकर लौटा देना एक बहुत पोटेंशियल फोर्स को लौटा देना है। तो गलती बात है, वह नहीं होना चाहिए।

पर कार्यकर्ता अभी विकसित भी नहीं हुए हैं। अभी तो कुछ मित्र आए हैं, वे अपना काम-धाम छोड़ कर थोड़ा मेरा काम कर देते हैं। वे तो तभी विकसित होंगे जब एक व्यापक संगठन खड़ा होगा और हम सारी चीजों के सारे मुद्दों पर धीरे-धीरे व्यवस्था कर सकेंगे। तो एक नया कार्यकर्ताओं का वर्ग निश्चित खड़ा करना है।

तीन बातें अंत में। एक तो मैं यूथ फोर्स का संगठन चाहता हूं; एक युवक क्रांति दल चाहता हूं पूरे मुल्क में--'युक्रांद' के नाम से एक संगठन चाहता हूं युवकों का। जो एक सैन्य ढंग का संगठन हो। जो युवक रोज

मिलते हों--युवक और युवतियां दोनों उसमें सम्मिलित हैं--खेलते हों। और मेरी अभी धारणा विकसित होती चली जाती है कि बूढ़ों का, वृद्धों का जो ध्यान है वह विश्राम का होगा, युवकों का जो ध्यान है वह सक्रिय होगा, मेडिटेशन इन एक्शन होगा; खेलते हुए, परेड करते हुए ध्यान। तो युवकों के संगठन गांव-गांव में खड़े करने हैं जो खेलेंगे भी और खेल के साथ ध्यान का प्रयोग करेंगे; जो कवायद करेंगे, परेड करेंगे और उसके साथ ध्यान का प्रयोग करेंगे। और इन युवकों की शक्ति के आधार पर फिर जीवन की जिन-जिन चीजों को हमें बदलना है उनकी हम हवा और खबर और गांव-गांव तक वातावरण पैदा करें। एक तो युवकों का एक संगठन खड़ा करना है।

एक, सैकड़ों संन्यासी-संन्यासिनियां--हिंदू, जैन, मुसलमान--मुझे निरंतर मिलते हैं और वे चाहते हैं कि एक नए संन्यासियों का वर्ग भी मुल्क में खड़ा हो, जो न किसी धर्म का है, न किसी संप्रदाय का है, जो सिर्फ धर्म का है। अब तक दुनिया में ऐसा हुआ नहीं। कोई संन्यासी जैन है, कोई संन्यासी हिंदू है, कोई मुसलमान है। तो एक दूसरा संन्यासियों का एक आर्डर भी मैं खड़ा करना चाहता हूं। और करीब दो सौ संन्यासी और संन्यासिनियां मुझसे इस बात के लिए राजी हुए हैं कि मैं जिस दिन उन्हें आवाज दूं वे अपने-अपने पंथ छोड़ कर आ सकेंगे और एक नए संन्यासियों का एक वर्ग, जो किसी धर्म का नहीं है, जो सिर्फ धर्म का है, वह गांव-गांव जाए और जीवन को बदलने की सारी खबरें वहां तक पहुंचाए।

तो एक दूसरा संगठन संन्यासियों और संन्यासिनियों का। और वह भी, जब भी कोई चाहे कि संन्यासी से ऊब गया है तो तत्क्षण वह गृहस्थ हो जाए। और यह अपमानजनक नहीं होगा। इसकी कोई पाबंदी और बंदिश नहीं होनी चाहिए। तब कोई भी युवक युनिवर्सिटी से निकले और दो वर्ष संन्यासी रहना चाहे तो संन्यासी रहे। दो वर्ष संन्यास का जीवन देखे, पहचाने। वापस लौट आए। उसे कोई बाधा नहीं है। तो एक संन्यासियों का एक वर्ग।

और तीसरा, जगह-जगह छात्रावास खड़े करने की मेरी योजना है जहां विद्यार्थी रहें, पढ़ें वे कहीं भी, लेकिन उनकी जीवनचर्या को बदलने के लिए छात्रावास खड़े किए जाएं जहां उनकी जीवनचर्या बदली जा सके।

इन तीनों कामों को करने के लिए जीवन जागृति केंद्र का विराट संगठन, गांव-गांव में उसकी शाखा, जगह-जगह उसके केंद्र, तब वह इन तीन कामों को जीवन जागृति केंद्र कर सके।

तो इस दिशा में आप सोचें और ध्यान रखें कि मैं इसे कोई धार्मिक संगठन नहीं बता रहा हूं। और ध्यान रखें कि यह संगठन सामाजिक क्रांति का संगठन है और इसे हम किस तरह से बनाएं, किस तरह से विकसित करें कि दस या पंद्रह वर्ष में इस देश की सामाजिक चेतना में एक स्थायी परिवर्तन खड़ा किया जा सके, एक छाप जीवन में छोड़ी जा सके और जीवन को बदलने की दिशा में कुछ द्वार, कुछ खिड़कियां खोली जा सकें। ये खोली जा सकती हैं।

इस संबंध में जल्दी ही मैं चाहूंगा कि कार्यकर्ताओं का तीन दिन का एक शिविर, ताकि मैं प्रत्येक पहलू पर अपनी बात आपसे कह सकूं और आपकी बात सुन सकूं और फिर हम उसके बाबत व्यापक काम में जुट सकें। कुछ और तो नहीं है बात? कुछ पूछने को हो तो पूछ लें आप।

प्रश्न: (रिकाघडग अस्पष्ट।)

अभी तक जो भी साहित्य का काम हुआ है वह ऐसा है कि नहीं होने से अच्छा है। वह कुछ ऐसा नहीं है कि जैसा होना चाहिए वैसा हो गया है। हो भी नहीं सकता था। जिन मित्रों को प्रेम पैदा हुआ उन्होंने कुछ करना शुरू किया। उनमें न तो साहित्यकार थे, न लेखक थे, जो भी आए प्रेम में उन्होंने कुछ अनुवाद भी किया। वह अनुवाद भी उनके प्रेम का ही प्रतीक था, उनकी कोई योग्यता थी, ऐसा नहीं था। लेकिन वह न करते तो होता भी नहीं। उन्होंने किया इसलिए आज खयाल भी पैदा होता है कि उससे अच्छा कुछ होना चाहिए। यह बिलकुल ठीक है, उससे अच्छा होना चाहिए।

और उस दिशा में हर केंद्र काम करे, क्योंकि मैं तो इतना बोल रहा हूं कि बंबई के केंद्र की सामर्थ्य के बाहर है कि वह छाप सके। मैं महीने भर में जितना बोलता हूं--जितने विषयों पर, जितनी विभिन्न बातों पर--उसको कोई एक केंद्र नहीं संभाल सकता। बंबई का केंद्र तो संभाल रहा है, सामर्थ्य से ज्यादा संभाल रहा है। और केंद्र

क्या है, दो-चार मित्र हैं। केंद्र के नाम पर क्या है? बंबई देख कर बड़ा भारी नाम मालूम पड़ता है। दो-चार मित्र हैं वे संभाल रहे हैं। और इसलिए उनकी, वे जो भी कर रहे हैं, उनकी गलतियों की मैं बात ही नहीं करता हूं, क्योंकि वे इतना कर रहे हैं और इतनी मुश्किल में कर रहे हैं कि उनकी गलतियों की बात करना अन्याय हो जाता। वह मैं बात ही नहीं करता, क्योंकि एक-दो मित्र खींच रहे हैं सारा समय लगा कर, सारी शक्ति लगा कर।

यह बिलकुल ही ठीक है, गलतियां अनुवाद में बहुत हैं। फिक्र करें जगह-जगह से। हर केंद्र से फिक्र करें। जहां से भी प्रकाशन की व्यवस्था जुटा सकें वहां प्रकाशन करें। गुजरात में गुजराती का प्रकाशन हो, यह अच्छा है। महाराष्ट्र में मराठी का हो, यह अच्छा है। हिंदी का प्रकाशन हिंदी के क्षेत्र से हो तो ज्यादा अच्छा होगा। इसमें कोई बाधा नहीं है। जो भी मित्र अपनी तरफ से, निजी भी कुछ व्यक्तिगत करना चाहें, वह भी करें।

अभी तो मेरा खयाल यह है कि पांच वर्ष जिससे जो बन सके वह करे। पांच साल के बाद हम हिसाब लगाएंगे कि क्या ठीक हुआ, क्या गलत हुआ। उसके बाद फिर कैसे ठीक हो, उसका विचार करेंगे। अभी तो जिससे जो बने वह करता चला जाए। अभी तो मैं यह मानता हूं कि जो गलत कर रहा है वह भी ठीक कर रहा है। कर तो रहा है! और उसके करने से कम से कम चार लोगों को खयाल पैदा होगा कि यह गलत हुआ, तो कुछ ठीक किया जा सकता है। इसलिए मैं रोकता ही नहीं किसी को। जो मुझसे कहता है कि करना है, मैं कहता हूं करो। यह भी जानते हुए कि यह बेचारा क्या अनुवाद करेगा!

एक मित्र ने अंग्रेजी में अनुवाद किया। उनका अनुवाद ठीक नहीं हो सकता था। मुझसे दूसरे लोगों ने भी कहा कि यह अनुवाद तो ठीक नहीं है। मैंने कहा, लेकिन कोई ठीक करने वाला कहता नहीं मुझसे कि करूं। ये कहते हैं, इसलिए इनको करने देता हूं। जब कोई ठीक करने वाला आकर मुझसे कहेगा कि करेंगे, तो उनको कहूंगा। अभी तो जो आया है उसको मैं करने देता हूं। इस बेचारे की हिम्मत तो देखो कि वह ज्यादा अंग्रेजी नहीं जानता, फिर भी अनुवाद कर रहा है! उसने अनुवाद किया। अनुवाद छप गया तो बहुत-से लोगों ने कहा कि बड़ा गलत अनुवाद है। मैंने उनको पूछा कि सही तुम करो, फिर उन्होंने नहीं किया कुछ। वह अभी तक एक ने भी नहीं किया सही अनुवाद।

हमारी कठिनाई जो है वह यह है कि हो जाए कुछ काम...।

एक मुझे खयाल आता है, एक पेंटर था फ्रांस में। उसने एक चित्र बनाया और एक चौरस्ते पर अपनी पेंटिंग लगा दी और गांव भर के लोगों से सलाह ली कि इसमें क्या-क्या गलतियां हैं। किताब रख दी, उसमें सारे लोग लिख गए आ-आ कर कि इसमें यह गलती है, इसमें यह गलती है, इसमें यह गलती है। सारी किताब भर गई! उसकी समझ के बाहर हो गया कि इतनी गलतियां एक पेंटिंग में करना भी बड़ी मुश्किल बात है! एक पेंटिंग छोटी-सी, इसमें उतनी गलतियां करनी बड़ी प्रतिभा की जरूरत है, तब हो सकती हैं। उसने अपने गुरु से कहा। गुरु ने कहा, अब तू एक काम कर, इस पेंटिंग को टांग दे और नीचे लिख दे कि इसमें जहां गलती हो उसको सुधार दिया जाए। उसको कोई सुधारने नहीं आया। उस गांव में एक आदमी ने भी ब्रश उठाकर उसकी पेंटिंग में कोई सुधार नहीं किया।

हमारा जो माइंड है, हमारा जो काम करने का ढंग है, वह हमेशा गलत क्या है वह हमें दिखाई पड़ जाता है। लेकिन ठीक क्या करना है वह हमारे खयाल में नहीं आता। तो वह तो मैं कहता हूं बच्चू भाई, यह अच्छा है, आप वहां बड़ौदा में कुछ करें, कुछ अहमदाबाद में मित्र करें--जो आपको ठीक लगे वह करें। और मेरी तो वृत्ति यह है कि जो भी आप करेंगे, मैं कहूंगा अच्छा है। क्योंकि अभी मेरा मानना यह है कि कुछ हो, फिर पीछे सब हिसाब-किताब लगा लेंगे कि क्या ठीक हुआ और क्या गलत हुआ। एक दफा हो तो!

तो हर केंद्र पर जो भी काम बन सके, वह शुरू करें। और बंबई कोई अभी केंद्र नहीं है, बंबई क्या केंद्र है अभी! दो-चार मित्र हैं! लेकिन सारे मुल्क में ऐसा खयाल पैदा हो गया है कि बंबई कोई केंद्र है, उसके पास कोई धन है। न कोई धन है, न कोई पैसा है। वे निरंतर उधारी में और निरंतर परेशानी में हैं, कमाई-वमाई का सवाल नहीं है। वे हर बार गंवाते हैं। मेरे साथ दोस्ती गंवाने की हो सकती है, कमाने की हो भी नहीं सकती।

तो मुझे भी बड़ी परेशानी होती है। और वे भी बेचारे, उनका धीरज देख कर भी मैं हैरान होता हूं। कि जब वे ये बातें सुन लेते हैं कि कमा रहे हैं, फलां कर रहे हैं, तो मुझे भी हैरानी होती है। वह कमाने-वमाने का कहां सवाल है! अभी बंबई में उन्होंने कुर्सियां रखीं तो लोगों से कहा था कि चार-चार आने डाल जाओ। वह चार-चार आने भी लोग पूरे नहीं डाल गए। वह कुर्सियां भी उनको, पैसे खुद ही चुकाने पड़े। झोली लेकर खड़े हुए तो मेरे पास न मालूम कितनी चिट्ठियां पहुंचीं कि यह तो बात बहुत गलत है कि झोली लेकर खड़े हुए, लेकिन किसी ने यह नहीं पूछा कि झोली में मिला कितना? मिला कुछ भी नहीं, लेकिन चिट्ठियां मेरे पास इतनी पहुंचीं जिन्होंने लिखा कि झोली लेकर खड़ा होना बिलकुल गलत है। जिन्होंने लिखा वे एक रुपया भी नहीं डाल गए होंगे उस झोली में। झोली लेकर खड़ा होना गलत है, कुर्सी के वे पैसे चुका नहीं सकते हैं। काम अच्छा होना चाहिए, वह कहां से होगा?

तो मेरी अपनी दृष्टि है कि अगर काम करना है केंद्र को तो पांच साल आलोचना और क्रिटिसिज्म की बात ही नहीं करनी चाहिए; काम करो। पांच साल बाद फिर इकट्ठा हिसाब लगाएंगे कि क्या-क्या गलती हुई है, उसको ठीक कर लेंगे। एक दफा काम! और मेरी अपनी समझ यह है कि काम खुद गलतियां सुधारता चला जाता है। जैसे-जैसे काम आगे बढ़ता है, ज्यादा होशियार लोग आएंगे, ज्यादा समझदार लोग आएंगे, वे काम को ठीक करते चले जाएंगे। एक बार काम जरूरी है। और हर केंद्र करे। बंबई के केंद्र का कोई ठेका नहीं है। वे जितना कर रहे हैं, कर रहे हैं। मैं तो चाहता हूं कि दूसरे केंद्र करने लगें तो उनका भार थोड़ा कम हो जाए। तो वह तो आप संभाल लें, बनाएं जगह-जगह केंद्र और जगह-जगह काम को अपने हाथ में ले लें और बांटें काम को। तो ही काम हो सकता है।

प्रश्नः केंद्र के बारे में आप कुछ बताएं।

बंबई के केंद्र ने कुछ नियम बनाए हुए हैं, वह तो उनका विधान है, वह आपको मिल जाएगा। लेकिन आप अपने गांव का जो केंद्र बनाएं, आप अपने नियम बना सकते हैं। मेरी दृष्टि यह है कि अभी एक-एक केंद्र अपने-अपने नियम बना ले, अपने हिसाब से काम शुरू कर दे। पीछे जब सब केंद्र काम करने लगेंगे तो उनको इकट्ठा कर लेंगे--पीछे, बाद में। पहले से एक केंद्र सबके ऊपर थोपे और आर्डर दे और काम करवाए, वह गलत है। एक-एक यूनिट काम करना शुरू कर दे, आपकी अपनी सुविधा है।

अब बंबई केंद्र बनाए तो वह ढाई सौ रुपया सदस्य की फी रख ले, तो बंबई में ढाई सौ रुपया कुछ भी नहीं है। अब एक छोटे-से गांव में ढाई सौ रुपया फी रख लो तो एक भी सदस्य नहीं बनेगा। वे चार आना फी रखते हैं। अब बंबई के कांस्टीटयूशंस से अगर गाडरवारा में कोई बनाने लगे केंद्र तो मुश्किल का मामला है। अभी गाडरवारा में मैं था, उन्होंने केंद्र बनाया। तो उन्होंने कहा, बंबई के हिसाब से हम बनाएं? मैंने कहा, बनाने की झंझट में पड़ना ही मत। वे हजार रुपए का पैट्रन रखे हैं, हजार रुपए का पैट्रन ढूंढने में ही तुम्हारी जिंदगी खत्म हो जाएगी। वह तुम्हें यहां मिलेगा ही नहीं। तुम तो अगर पंद्रह रुपए का पैट्रन खोजोगे तो मिल सकता है। तो तुम अपनी फिक्र कर लो, अपने गांव का...।

मेरी अपनी दृष्टि यह है कि पहले सारे मुल्क में छोटे-छोटे यूनिट बन जाएं। वे अपना काम शुरू कर दें--अपनी व्यवस्था, अपनी सुविधा, अपनी जगह देख कर। फिर पीछे हम उनको कभी भी इकट्ठा कर ले सकते हैं। उसमें कोई कठिनाई नहीं है।

तो जीवन जागृति केंद्र की शाखाएं नहीं हैं जो जगह-जगह बन रही हैं, वे सब जीवन जागृति केंद्र हैं। वे ब्रांचेज नहीं हैं उसकी, वे सब इंडिपेन्डेंट यूनिट हैं। और उनके ऊपर कोई मालिक नहीं है ऊपर से आज्ञा देने को उनको। मैं मानता भी नहीं कि इस तरह की बात होनी चाहिए कि कोई ऊपर से आज्ञा दे कि ऐसा करो, वैसा करो। फिर वे पद खड़े होते हैं, फिर सारा चक्कर शुरू होता है। एक-एक यूनिट स्वतंत्र है; वह अपना बना ले, अपना काम शुरू करे। बंबई का यूनिट बहुत दिन से काम कर रहा है। उससे कोई सलाह मांगनी है, सलाह मांग ले; मार्ग-निर्देश चाहिए, मार्ग-निर्देश ले ले। लेकिन अपना काम शुरू करे अपने ढंग से। पीछे जब मुल्क में दो सौ यूनिट काम करने लगें तो हम इकट्ठे होकर उनको इकट्ठा कर लेंगे। उसमें कितनी देर लगनी है?

उसमें कोई कठिनाई नहीं है। अभी किसी की तरफ मत देखें, अपना आप काम शुरू करें। उनके पास जो कांस्टीटयूशन है वह आप ले लें और देख लें। उससे कुछ फायदा मिलता हो तो उसको समझ लें।

एक एक कदम

विचार
क्रांति
की आवश्यकता
मेरे प्रिय आत्मन् ,
एक आदमी परदेस गया, एक ऐसे देश में जहां की वह भाषा नहीं समझता है और न उसकी भाषा ही दूसरे लोग समझते हैं। उस देश की राजधानी में एक बहुत बड़े महल के सामने खड़े होकर उसने किसी से पूछा, यह भवन किसका है? उस आदमी ने कहा, कैवत्सन। उस आदमी का मतलब था: मैं आपकी भाषा नहीं समझा। लेकिन उस परदेसी ने समझा कि किसी 'कैवत्सन' नाम के आदमी का यह मकान है। उसके मन में बड़ीर् ईर्ष्या पकड़ी उस आदमी के प्रति जिसका नाम कैवत्सन था। इतना बड़ा भवन था, इतना बहुमूल्य भवन था, हजारों नौकर-चाकर आते-जाते थे, सारे भवन पर संगमरमर था! उसके मन में बड़ीर् ईर्ष्या हुई कैवत्सन के प्रति। और कैवत्सन कोई था ही नहीं! उस आदमी ने सिर्फ इतना कहा था कि मैं समझा नहीं कि आप क्या पूछते हैं।
फिर वह आदमी घूमता हुआ बंदरगाह पर पहुंचा। एक बड़े जहाज से बहुमूल्य सामान उतारा जा रहा था, कारें उतारी जा रही थीं। उसने पूछा, यह सामान किसका उतर रहा है? एक आदमी ने कहा, कैवत्सन। उस आदमी ने कहा, मैं समझा नहीं कि आप क्या पूछते हैं।
उस परदेसी कीर् ईर्ष्या और भी बढ़ गई। जिसका वह भवन था, उसी आदमी की ये बहुमूल्य कारें भी उतारी जा रही थीं! और वह आदमी था ही नहीं! उसका मन आग से जलने लगा। काश, वह भी इतना धनी होता! और जब वह रास्ते पर लौटता था--उदास, चिंतित, दुखी,र् ईर्ष्या से भरा हुआ--तो उसने देखा कि किसी की अरथी जा रही है और हजारों लोग उस अरथी के पीछे हैं। निश्चित ही, जो आदमी मर गया है वह बड़ा आदमी होगा! उसके मन में अचानक खयाल आया, कहीं कैवत्सन मर तो नहीं गया है! उसने राह चलते एक आदमी से पूछा कि कौन मर गया है? उस आदमी ने कहा, कैवत्सन। मैं समझा नहीं।
उस आदमी ने अपनी छाती पीट ली। निश्चितर् ईर्ष्या हुई थी उस आदमी से। लेकिन बेचारा मर गया! इतना बड़ा महल! इतनी बढ़िया कारें! इतनी धन-दौलत! वह सब व्यर्थ पड़ी रह गई! वह आदमी मर गया जो आदमी था ही नहीं!
बहुत बार ऐसी ही हालत मुझे अपने संबंध में मालूम पड़ती है। ऐसा लगता है कि किसी परदेस में हूं। न आप मेरी भाषा समझते हैं, न मैं आपकी भाषा समझता हूं। जो कहता हूं, जब आपमें उसकी प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है तो बहुत हैरान हो जाता हूं, क्योंकि वह तो मैंने कभी कहा ही नहीं था! जब आप कुछ पूछते हैं तो जो मैं समझता हूं कि आपने पूछा है, जब मैं उत्तर देता हूं और आपकी आंखों में झांकता हूं तो पता चलता है, यह तो आपने पूछा ही नहीं था! एक अजनबी, एक आउटसाइडर, एक परदेसी की तरह मेरी हालत है।
लेकिन फिर भी कोशिश करता हूं समझाने की वह जो मुझे दिखाई पड़ता है। नहीं मेरी इच्छा है कि जो मुझे दिखाई पड़ता है उसे आप मान लें; क्योंकि जो आदमी भी किसी से कहता है कि मेरी बात मान लो, वह आदमी मनुष्य-जाति का दुश्मन है; क्योंकि जब भी मैं यह कहता हूं कि मेरी बात मान लो तब मैं यह कहता हूं, मुझे मान लो और अपने को छोड़ दो। और जो भी आदमी किसी से यह कहता है कि खुद को छोड़ दो और किसी दूसरे को मान लो, वह आदमी लोगों की आत्माओं की हत्या करता है। जितने लोग दूसरों को मनाने के लिए आतुर हैं वे सारे लोग मनुष्य-जाति के लिए खतरनाक सिद्ध होते हैं।
मैं नहीं कहता हूं कि मेरी बात मान लो; मानने का कोई सवाल नहीं है। मैं इतनी ही कोशिश करता हूं कि मेरी बात समझ लो। और समझने के लिए मानना जरूरी नहीं है। बल्कि जो लोग मान लेते हैं वे समझ नहीं पाते हैं। जो नहीं मानते हैं वे भी नहीं समझ पाते हैं। क्योंकि मानने और न मानने की जल्दी में समझने की फुर्सत

नहीं मिलती है। जिस आदमी को समझना है उसे मानने और न मानने की आतुरता नहीं दिखानी चाहिए; उसे समझने की ही आतुरता दिखानी चाहिए।

मेरी बात को मानने से आपका कोई विकास नहीं होगा। किसी की बात मानने से किसी का कभी कोई विकास नहीं होता है; लेकिन किसी की भी बात समझने से जरूर विकास होता है। क्योंकि जितना आप समझने की कोशिश करते हैं उतनी आपकी समझ विकसित होती है। लेकिन हम सारे लोग उत्सुक होते हैं मानने या न मानने को। क्योंकि समझने में श्रम करना पड़ता है, मानने न मानने में श्रम की कोई भी जरूरत नहीं पड़ती। और हम मानसिक रूप से इतने आलसी हो गए हैं कि हम मन से कोई भी श्रम नहीं करना चाहते हैं। इसीलिए दुनिया में इतने अनुयायी दिखाई पड़ते हैं; दुनिया में इतने वाद, इतने इज्म दिखाई पड़ते हैं। इसीलिए दुनिया में इतने गुरु दिखाई पड़ते हैं, इतने शिष्य दिखाई पड़ते हैं। जिस दिन मनुष्य मानसिक श्रम करने को राजी होगा, इस दुनिया में कोई अनुयायी नहीं होगा, कोई वाद नहीं होगा, कोई गुरु, कोई शिष्य नहीं होगा। जब तक हम मानसिक रूप से श्रम करने को राजी नहीं हैं तब तक दुनिया में ये सब नासमझियां जारी रहेंगी। क्योंकि जो लोग भी श्रम नहीं करना चाहते वे किसी दूसरे के श्रम पर ही आधारित होना चाहते हैं। यह भी एक तरह का शोषण है। मैं सोचूं और आप मान लें, तो आपने मेरा शोषण किया। मैं सोचूं और आपको जबरदस्ती मना दूं, तो मैं आपका शोषण कर रहा हूं। और दुनिया में आर्थिक शोषण इतना ज्यादा नहीं है जितना मानसिक और आध्यात्मिक शोषण है। पैसे का शोषण इतना बड़ा नहीं है, क्योंकि किसी का पैसा छीन लेने से आप उसका कुछ भी नहीं छीनते हैं, लेकिन जब किसी आदमी की आत्मा छिन जाती है तो उसका सब कुछ छिन जाता है।

सारी दुनिया आध्यात्मिक रूप से एक गुलामी में है और गुलामी का कारण है एक मानसिक आलस्य, एक मेंटल लेथार्जी। भीतर हम कुछ भी नहीं करना चाहते हैं। इसलिए कोई भी जोर से कह दे कि मेरी बात मानो, मैं भगवान हूं; या चार नासमझों को इकट्ठा कर ले और बाजार में डुंडी पिटवा दे कि एक बहुत बड़े महात्मा गांव में आ रहे हैं, तो हम मानने को एकदम तैयार हो जाते हैं। हम मानने को तैयार ही बैठे हैं--कोई आ जाए और हमें कहे कि मैं ठीक हूं; जोर से कहना चाहिए; और वस्त्र उसके रंगे हुए होना चाहिए; और उसके आस-पास प्रचार की हवा होनी चाहिए; फिर हम मानने को तैयार हो जाते हैं।

क्या हम सोचने को कभी भी तैयार नहीं होंगे? मनुष्य-जाति का जन्म ही नहीं होगा अगर मनुष्य सोचने को तैयार नहीं होता है। लेकिन हम सोचने को बिलकुल तैयार नहीं हैं।

मेरा कोई भी आग्रह नहीं है कि मैं जो कहता हूं उसे मानें; और इसलिए न मानें इसका भी आग्रह नहीं है। आग्रह कुल इतना है कि जो मैं कहता हूं उसे सुनें, समझें। वही मुश्किल हो गया, क्योंकि भाषा ही ऐसी मालूम पड़ती है। मैं कोई और भाषा बोलता हूं, आप कोई और भाषा समझते हैं।

एक गांव मैं गया हुआ था। एक मित्र आए और कहने लगे, लोकतंत्र के संबंध में आपका क्या खयाल है? डेमोक्रेसी के बाबत आप क्या सोचते हैं? मैंने कहा, जिसे तुम लोकतंत्र कहते हो अगर यही लोकतंत्र है, तो इससे तो बेहतर है कि मुल्क तानाशाही में चला जाए। उन्होंने जाकर गांव में खबर कर दी कि मैं तानाशाही को पसंद करता हूं।

यह ऐसे ही हुआ कि जैसे कोई बीमार आदमी मेरे पास आए खांसता-खंखारता और मुझसे पूछे कि मैं क्या करूं, तो उससे मैं कहूं, इस तरह बीमार जिंदा रहने की बजाय तो बेहतर है कि तुम मर जाओ और वह आदमी गांव में खबर कर दे कि मेरा मानना यह है कि सब लोगों को मर जाना चाहिए। लौट कर उस गांव में पता चला कि मैं लोकतंत्र का दुश्मन हूं और तानाशाही के पक्ष में हूं। और यही नहीं, यह भी पता चला कि मैं खुद ही तानाशाह होना चाहता हूं। तब सिवाय इसके मानने के क्या रास्ता रहा कि भाषाएं शायद हम दो तरह की बोल रहे हैं!

मुझसे ज्यादा लोकतंत्र को प्रेम करने वाला आदमी खोजना थोड़ा मुश्किल है। मैं तो लोकतंत्र को इतना प्रेम करता हूं कि चाहता हूं कि दुनिया में कोई तंत्र ही न रह जाए; क्योंकि जब तक तंत्र है, तब तक लोकतंत्र नहीं हो सकता है। कोई भी तंत्र होगा ऊपर तो आदमी को गुलाम बनाएगा--कम या ज्यादा। लेकिन तंत्र होगा तो

गुलाम बनाएगा। तंत्र होगा, शासन होगा, तो आदमी किसी न किसी तरह की गुलामी में रहेगा; कम और ज्यादा दूसरी बात है। जिस दिन तंत्र नहीं होगा उसी दिन जगत में ठीक लोकतंत्र होगा। जिस दिन शासन नहीं होगा उसी दिन दुनिया में ठीक शासन आया, ऐसा कहना चाहिए।

लेकिन मुझे उस गांव में जाकर पता चला कि मैं खुद ही तानाशाह होना चाहता हूं; मैं तानाशाही को पसंद करता हूं। न केवल अखबारों में यह खबर निकली है, एक सज्जन ने पूरी किताब ही लिख दी है इस बात के ऊपर कि मैं तानाशाह होना चाहता हूं। तब सिवाय इसके कि हम अलग-अलग भाषाएं बोल रहे हैं और क्या कहा जा सकता है!

मैं एक गांव में ठहरा हुआ था। जिस घर में रुका हुआ था उस गांव के कलेक्टर की पत्नी मुझसे मिलने आई। जब कालेज में मैं पढ़ता था तो वह महिला मेरे साथ पढ़ती थी। सर्दी की रात थी, मैं कंबल अपने पैरों पर डाले हुए बिस्तर पर बैठा था। वह मिलने आई, वह मुझसे गले मिल गई। न मालूम बचपन की और कालेज के दिनों की बहुत-सी स्मृतियां सुनाने लगी। बैठ गई पलंग पर। मैंने उससे कहा कि सर्दी है। कंबल उसने अपने पैरों पर डाल लिया। हम दोनों उस पलंग पर कंबल डाले बैठे रहे।

दूसरे दिन सभा में एक आदमी ने चिट्ठी लिख कर मुझे पूछा कि कल रात एकांत में एक स्त्री के साथ, एक ही बिस्तर पर, एक ही कंबल में आप थे या नहीं? हां या न में जवाब दीजिए! और हम गोल-मोल उत्तर पसंद नहीं करते हैं, या तो हां कहिए या न कहिए।

मैंने कहा, बिलकुल था; हां।

घर लौट कर आया, घर के लोग कहने लगे, आप बिलकुल पागल हैं। आपने हां कहा, लोग क्या समझ होंगे! मैंने कहा, बात सच्ची थी, हम एक बिस्तर पर थे, एक ही कंबल में थे, रात भी थी, वे तो ठीक ही कह रहे थे। उन्होंने कहा, यह सवाल नहीं है कि वे क्या...उनका मतलब आप नहीं समझे। उनका मतलब बिलकुल दूसरा था। सारे गांव में क्या अफवाह उड़ रही है आपको पता नहीं है कि आप एक स्त्री के साथ, एक ही बिस्तर पर, एक ही कंबल में थे।

मैंने कहा, सिवाय इसके कि हम भाषाएं अलग बोलते हैं और क्या समझा जा सकता है? क्या समझा जा सकता है? इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है। फिर मुझसे लोग पूछते हैं कि जवाब दीजिए और जवाब गोल-मोल नहीं होना चाहिए, सीधा-सीधा होना चाहिए, वे हां और न में जवाब चाहते हैं। और तब मैं बहुत चकित भी होता हूं, रोता भी हूं और हंसता भी हूं। कैसे लोगों के साथ...!

तब मुझे याद आती है एक फकीर की। एक फकीर था बोधिधर्म। वह हिंदुस्तान से चीन गया। लेकिन चीन में नौ वर्षों तक वह आदमी दीवार की तरफ मुंह किए बैठा रहा। अगर आप उससे मिलने जाते तो बहुत अशिष्ट मालूम पड़ता वह आदमी, क्योंकि वह आपकी तरफ मुंह नहीं करता था, वह दीवार की तरफ मुंह रखता था; आपकी तरफ पीठ रखता था। वह जब भी बैठता, दीवार की तरफ मुंह करके बैठता। चीन का सम्राट वू उससे मिलने आया। उसने कहा, यह क्या बदतमीजी है? मैं तुम्हारे पीछे खड़ा हूं, तुम दीवार की तरफ मुंह किए हो! उस बोधिधर्म ने कहा कि हजारों अनुभवों के बाद इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि दीवार की तरफ मुंह करना ठीक होता है; क्योंकि आदमी भी मुझे दीवार की तरह मालूम पड़ते हैं; कोई सुनता ही नहीं! तो तुम्हारी तरफ मुंह करूं उसमें मुझे ज्यादा बदतमीजी मालूम पड़ती है; क्योंकि तुम आदमी कम और दीवार ज्यादा मालूम पड़ते हो। और हो सकता है कि मेरी आंखों में तुम्हें खयाल आ जाए कि यह आदमी मुझे दीवार समझ रहा है। तो मैं दीवार की तरफ मुंह रखता हूं, जब कोई आदमी आएगा तो मैं उसकी तरफ मुंह कर लूंगा; लेकिन तुम दीवार हो।

सम्राट वू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि पहली बार एक आदमी मुझे मिला जिससे कुछ बात सुनने योग्य थी; लेकिन शायद मैं सुनने योग्य पात्र नहीं था इसलिए उसने मेरी तरफ मुंह नहीं किया।

बोधिधर्म ने ठीक किया। कई बार मुझे भी लगता है कि अगर यही खींचतान भाषा की जारी रहती है तो बजाय आपकी तरफ मुंह करने के दीवार की तरफ मुंह कर लेना उचित होगा। लेकिन अभी मैं हार नहीं गया हूं और निराश नहीं हो गया हूं। अभी कोशिश जारी रखूंगा। मानना नहीं चाहता हूं कि आप दीवार हैं। मानने का यही

एक एक कदम

मन होता है कि आप भी एक मनुष्य हैं और भीतर एक विचारशील आत्मा है। आपकी सारी कोशिश के बावजूद भी आशा को जगाए रखता हूं और यह कोशिश करता हूं कि शायद किसी दिन बात सुनाई पड़ जाए। लेकिन अभी तो उलटा ही मालूम पड़ता है।

अभी गुजरात लौटा तो बड़ी गर्मी है। गांव-गांव में गया तो लोगों ने कहा, आप गांधी के दुश्मन हैं। तब मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ! अगर गांधी के कोई दुश्मन हैं इस मुल्क में तो गोडसे से भी ज्यादा गांधीवादी गांधी के दुश्मन हैं। गोडसे ने गांधी के शरीर की हत्या की, गांधीवादी गांधी की आत्मा की हत्या करने पर पूरी तरह उतारू हैं। गोडसे की गोली के बाद भी गांधी बच गए हैं पूरी तरह। गांधी को वह गोली नहीं लगी, नहीं लग सकती है; लेकिन गांधीवादी जो गांधी की जय-जयकार करके जिस तरह की गोलियां मार रहे हैं, गांधी का नाम भी पुछ जाएगा। लेकिन वे ही लोग खबर करते हैं कि मैं गांधी का दुश्मन हूं।

तब मैं हैरान होता हूं कि गांधी से मेरी दुश्मनी क्या हो सकती है? और कौन गवाह बनेगा? सिवाय गांधी के कोई गवाह नहीं बन सकता था इस मामले में। लेकिन गवाह वे लोग हैं जो गांधी की सब भांति हत्या कर रहे हैं।

यह आपको खयाल नहीं होगा कि दुनिया में आज तक...जीसस की हत्या उन लोगों ने नहीं की जिन्होंने ने उन्हें सूली पर लटकाया। जीसस की हत्या की ईसाइयों ने, जो उनके अनुयायी हैं। और सुकरात को उन्होंने नहीं मारा जिन लोगों ने सुकरात को जहर पिलाया था। सुकरात को वे लोग मार सकते हैं जो सुकरात के शिष्य होने के खयाल में पड़ जाएं।

सुकरात मरने के करीब था तो उसके एक मित्र क्रेटो ने, उसके एक शिष्य ने पूछा कि आपको सांझ जहर दे दिया जाएगा; हम आपको दफनाएंगे कैसे, इस संबंध में कुछ बताइए। सुकरात ने कहा, देखो मजा, वे मेरे दुश्मन हैं जो मुझे मारने की कोशिश कर रहे हैं और ये मेरे मित्र हैं जो मुझे दफनाने की कोशिश कर रहे हैं! यह देखो मजा कि मेरे मित्र मुझसे पूछते हैं कि दफनाएंगे कैसे! मित्र सदा यही पूछते हैं कि मर तो आप जाओगे, हम दफनाएंगे कैसे।

वे गांधीवादी गांधी को दफनाने की कोशिश कर रहे हैं। वे मित्र हैं उनके! सुकरात ने बड़े मजे की बात कही थी क्रेटो को। शायद ही क्रेटो समझ पाया हो, क्योंकि भाषाओं के भेद सदा हैं। सुकरात ने कहा था, पागल क्रेटो, तुम दफनाने की कोशिश करना, लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, तुम सब दफन जाओगे फिर भी मैं रहूंगा। और अगर कोई तुम्हें कभी याद भी रखेगा तो सिर्फ इसलिए कि तुमने सुकरात से प्रश्न पूछा था कि हम कैसे दफनाएंगे। और आज क्रेटो के बाबत इतना ही पता है कि उसने सुकरात से पूछा था, और कुछ भी पता नहीं है।

शिष्य दफनाते हैं गुरुओं को; अनुयायी दफनाते हैं नेताओं को; पीछे चलने वाले दफनाते हैं आगे चलने वालों को। क्यों ऐसा हो जाता है लेकिन?

इसके होने के पीछे कुछ कारण है। यह शायद आपको पता न हो, यह शायद खयाल में भी न हो कि जो आदमी भी किसी का अनुयायी बनता है, वह आदमी पहली तो बात है खतरनाक है, डेंजरस है। क्योंकि कोई बुद्धिमान आदमी कभी किसी का अनुयायी नहीं बनता है; सिर्फ बुद्धिहीन लोग अनुयायी बनते हैं। अनुयायियों की जमात बुद्धिहीनों की जमात है; स्टुपिडिटी की जमात है; जहां सारे बुद्धिहीन इकट्ठे हो जाते हैं।

मैंने सुना है, एक बार एक आदमी को सत्य मिल गया। शैतान के शिष्य भागे हुए शैतान के पास गए और उन्होंने कहा, क्या सो रहे हो, एक आदमी को सत्य मिल गया है! सब मुश्किल पड़ जाएगी। शैतान ने कहा, घबराओ मत, जाकर गांव में खबर कर दो कि एक आदमी को सत्य मिल गया है, किसी को अनुयायी बनना हो तो बन जाओ। शैतान के शिष्यों ने कहा, इससे क्या फायदा होगा; हम ही प्रचार करें?

शैतान ने कहा कि मेरे हजारों साल का अनुभव यह है कि अगर किसी आदमी को सत्य मिला हो और उस आदमी को और उसके सत्य को खत्म करना हो तो अनुयायियों की भीड़ इकट्ठी कर दो। तुम जाओ, गांव-गांव में डुंडी पीट दो कि किसी आदमी को अगर सत्य गुरु चाहिए हो तो सत्य गुरु पैदा हो गया है। तो जितने मूढ़

होंगे वे भाग कर उसके आस-पास इकट्ठे हो जाएंगे और एक बुद्धिमान आदमी हजार मूढ़ों के बीच में क्या कर सकता है!

और यही हुआ। शैतान के शिष्यों ने गांव-गांव में खबर कर दी। जितने बुद्धिहीन जन थे वे सब इकट्ठे हो गए। और वह आदमी भागने लगा कि मुझे बचाओ। लेकिन उसे कौन बचाता! शिष्यों ने उसे जोर से पकड़ लिया। दुश्मन से आप बच सकते हैं, शिष्यों से कैसे बच सकते हैं? इसलिए अगर कभी किसी को सत्य मिल जाए तो अनुयायियों से सावधान रहना, शिष्यों से बचना। वे हमेशा तैयार हैं, शैतान उनको सिखा कर भेजता है। गांधी जिंदगी भर चिल्लाते रहे कि मेरा कोई वाद नहीं है और अब गांधीवादी उनके वाद को सुव्यवस्था देने की कोशिश में लगे हैं। वे रिसर्च कर रहे हैं, शोध-केंद्र बना रहे हैं, स्कॉलरशिप्स दे रहे हैं, और कह रहे हैं कि गांधी के वाद का रेखाबद्ध रूप तय करो। गांधी के वाद को खड़ा किया जा रहा है। गांधी जिंदगी भर कोशिश करते रहे कि मेरा कोई वाद नहीं है।

सच बात तो यह है कि किसी भी विवेकशील आदमी का कोई वाद नहीं होता। विवेकशील आदमी प्रतिपल अपने विवेक से जीता है, वाद के आधार पर नहीं। वाद के आधार पर वे जीते हैं जिनके पास विवेक नहीं होता है। वाद का क्या मतलब होता है?

वाद का मतलब होता है, तैयार उत्तर। जिंदगी रोज बदल जाती है, जिंदगी रोज नए सवाल पूछती है और वादी के पास तैयार उत्तर होते हैं। वह अपनी किताब में से उत्तर लेकर आ जाता है कि यह उत्तर काम करना चाहिए। जिंदगी रोज बदल जाती है, वादी बदलता नहीं, वादी ठहर जाता है।

जो महावीर पर ठहर गए हैं वे ढाई हजार वर्ष पहले ठहर गए हैं। ढाई हजार वर्ष में जिंदगी कहां से कहां चली गई और वादी महावीर पर ठहरा है। वह कहता है, हम महावीर को मानते हैं। जो कृष्ण पर ठहरा है वह साढ़े तीन, चार हजार वर्ष पहले ठहरा है। जो क्राइस्ट पर ठहरा है वह दो हजार साल पहले ठहरा है। वे वहां ठहर गए हैं जिंदगी वहां नहीं ठहरी है, जिंदगी आगे बढ़ती चली गई है।

जिंदगी प्रतिपल बदल जाती है। जिंदगी रोज नए सवाल लाती है और वादी के पास बंधे हुए रेडीमेड उत्तर हैं। रेडीमेड कपड़े हो सकते हैं, रेडीमेड उत्तर नहीं हो सकते। वह बंधे हुए उत्तर को लेकर नए सवालों के सामने खड़ा हो जाता है। वह कहता है कि हमारे उत्तर सही हैं। तब ये उत्तर हारते चले जाते हैं। इसलिए वादी व्यक्ति के पास निरंतर हार आती है, कभी जीत नहीं आती। वादी हमेशा हार जाते हैं।

मैंने सुना है, जापान में एक छोटा-सा गांव था। उस गांव में दो मंदिर थे। एक मंदिर उत्तर का मंदिर था, एक दक्षिण का मंदिर था। उन दोनों मंदिरों में पुश्तैनी झगड़ा था, दुश्मनी थी।

मंदिरों में हमेशा झगड़ा होता है, यह तो आप जानते हैं। दो मंदिरों में दोस्ती नहीं सुनी होगी। मंदिरों में कभी दोस्ती नहीं होती। अभी वे अच्छे दिन नहीं आए दुनिया में जब मंदिरों में दोस्ती होगी। अभी मंदिरों में झगड़ा होता है। अभी मंदिर खतरनाक हैं। अभी मंदिर धार्मिक नहीं हैं। जब तक मंदिर झगड़ा करवाते हैं तब तक वे धार्मिक कैसे हो सकते हैं? अभी दुनिया में सभी मंदिर अधर्म के अड्डे हैं, क्योंकि उनसे झगड़े की शुरुआत होती है।

उस गांव के दोनों मंदिरों में भी झगड़ा था। झगड़ा इतना ज्यादा था कि पुजारी एक-दूसरे का चेहरा भी देखना पसंद नहीं करते थे। दोनों पुजारियों के पास दो छोटे बच्चे थे काम के लिए--सब्जी लाने के लिए, ऊपर का काम, सेवा करने के लिए। पुजारियों ने उन बच्चों को समझा दिया था कि कभी भूल कर दूसरे मंदिर की तरफ मत जाना और यह भी समझा दिया था कि दूसरे मंदिर का वह जो लड़का है उससे कोई दोस्ती मत करना। हमारी दुश्मनी बहुत प्राचीन है और प्राचीन चीजें बड़ी पवित्र होती हैं। तो इस पवित्र दुश्मनी को बाधा मत देना; कभी मिलना-जुलना मत।

लेकिन बच्चे बच्चे हैं। बूढ़े बिगाड़ने की कोशिश भी करते हैं तो भी एकदम से बिगाड़ तो नहीं देते। बच्चों को भी बिगड़ने में वक्त लग जाता है। बूढ़े तो बिगाड़ने की कोशिश करते हैं कि जन्म से ही बिगाड़ दें, लेकिन बिगाड़ते-बिगाड़ते वक्त लग जाता है। बच्चे थोड़े दिन तक नहीं बिगड़ते हैं, इनकार करते हैं। जिन बच्चों में जितनी जान होती है वे अपने मां-बाप से उतने लड़ते हैं कि बिगाड़ नहीं सकोगे हमें। लेकिन अक्सर मां-बाप

जीत जाते हैं और बच्चे हार जाते हैं। अब तक तो ऐसा ही हुआ है, बच्चे अब तक नहीं जीत सके हैं। लेकिन आगे आशा बांधनी चाहिए कि वह वक्त आएगा कि मां-बाप हारेंगे और बच्चे जीतेंगे; क्योंकि जब तक बच्चे नहीं जीतते हैं मां-बाप से, तब तक दुनिया के पुराने रोग समाप्त नहीं हो सकते। वे जारी रहेंगे। क्योंकि मां-बाप उस जहर को बच्चों में डाल देते हैं।

वे बूढ़े पुजारी भी उन बच्चों को समझाते थे कि कभी भूल कर देखना भी मत! लेकिन बच्चे बच्चे हैं, कभी-कभी मौके-बेमौके चोरी से छिप कर वे आपस में मिल लेते थे। चोरी से मिलना पड़ता था। दुनिया इतनी बुरी है कि यहां अच्छे काम भी चोरी से करने पड़ते हैं; अभी अच्छे काम खुलेआम करने की नौबत नहीं आ पाई है। बच्चों को चोरी से मिलना पड़ता था। लेकिन एक दिन एक पुजारी ने देख लिया कि उसका बच्चा दूसरे बच्चे से रास्ते पर मिल रहा है। उस पुजारी को आग लग गई।

हिंदू बाप को आग लग जाती है, मुसलमान बेटे से उसका बेटा मिल रहा हो। और बेटे से बेटा मिल रहा हो तब तो आग कम लगती है, अगर बेटी से बेटा मिल रहा हो तब आग बहुत लग जाती है। क्योंकि दो बेटों का मिलना उतना खतरनाक नहीं है, लेकिन एक बेटे और बेटी का मिलना बहुत खतरनाक हो सकता है। वह खतरनाक इतना हो सकता है कि हिंदू और मुसलमान दोनों उस खतरे में बह जाएं। इसलिए बेटी और बेटे को मिलने की बिलकुल ही रुकावट है।

पुजारी ने देखा, वह क्रोध से भर गया और उस लड़के को बुलाया और कहा, तू उससे क्या बात कर रहा था? मैंने कितनी बार कहा कि उससे बात नहीं करनी है!

उस लड?के ने कहा, आज तो मुझे भी लगा कि आप ठीक कहते हैं कि उससे बात नहीं करनी है, क्योंकि आज मैं पराजित होकर लौटा हूं। मैंने उस लड़के से पूछा कि कहां जा रहे हो? उस लड़के ने कहा, जहां हवाएं ले जाएं। और मैं एकदम हैरान रह गया। उसने ऐसी मेटाफिजिकल, इतनी दार्शनिक बात कह दी कि जहां हवाएं ले जाएं। फिर मुझे कुछ सूझा ही नहीं कि आगे मैं क्या कहूं।

उस पुजारी ने कहा, यह बहुत खतरनाक बात है! हम कभी उस मंदिर के किसी आदमी से नहीं हारे। यह हार पहली है, कल उस लड़के को हराना पड़ेगा। तू कल उससे जाकर पूछना फिर कि कहां जा रहे हो? और जब वह कहे जहां हवाएं ले जाएं, तो उससे कहना कि अगर हवाएं रुकी हों और न चल रही हों तो फिर कहीं जाओगे कि नहीं? फिर वह भी घबरा जाएगा।

वह लड़का उत्तर तैयार लेकर जाकर रास्ते पर खड़ा हो गया। उत्तर तैयार!

उत्तर तैयार बुद्धिहीनता का लक्षण है। जिस आदमी के पास भी उत्तर तैयार है उससे ज्यादा ईडियट, उससे ज्यादा जड़ बुद्धि का आदमी खोजना मुश्किल है। उत्तर तैयार होना ही मीडियॉकर माइंड का लक्षण है। बुद्धिमान आदमी के पास उत्तर कभी तैयार नहीं होते। वह प्रश्नों का साक्षात करता है और उत्तर जन्मते हैं, उत्तर तैयार नहीं होते।

पर उस लड़के ने उत्तर तैयार कर लिया और वह जाकर रास्ते पर खड़ा हो गया। अब वह तैयार अपना उत्तर रखे है कि कब वह आए और मैं पूछूं।

पंडित इसी तरह के होते हैं। सब उत्तर तैयार हैं।

वह लड़का आया रास्ते पर। तैयार उत्तर वाले लड़के ने पूछा कि मित्र, कहां जा रहे हो?

पूछने में उसे उत्सुकता नहीं थी, उसे उत्सुकता थी अपना उत्तर देने में। बहुत कम लोग हैं जिनकी उत्सुकता पूछने में होती है, बहुत अधिक लोग ऐसे ही हैं जिनको अपने उत्तर में उत्सुकता होती है। और जिन लोगों को उत्तर में उत्सुकता होती है, उनका पूछना सदा झूठा होता है।

उस लड़के ने कहा, कहां जा रहा हूं? जहां पैर ले जाएं!

अब बड़ी मुश्किल हो गई, क्योंकि उत्तर तैयार था! अब क्या करें, क्या न करें! वही उत्तर देना व्यर्थ हो गया है। क्रोध आया बहुत--अपने पर नहीं, इस लड़के पर कि बेईमान है! अपनी बात बदलता है! कल कहता था कि हवा जहां ले जाए, आज कहता है कि पैर जहां ले जाएं। बेईमान!

लेकिन लौट कर अपने गुरु से कहा कि वह लड़का तो बहुत बेईमान निकला। उस गुरु ने कहा कि उस मंदिर के लोग सदा से बेईमान रहे हैं। नहीं तो झगड़ा हमारा क्या है! क्या वह उत्तर बदल गया? कहा, वह तो बदल गया।

जो बुद्धिहीन हैं उन्हें कभी खयाल ही नहीं आता कि जिंदगी रोज बदल जाती है। जिंदगी बड़ी बेईमान है। सिर्फ मुर्दे नहीं बदलते, जिंदगी बदल जाती है। फूल बदल जाते हैं, पत्थर उनके नीचे वैसे ही पड़े रहते हैं। वे बिलकुल नहीं बदलते। पत्थर मन में सोचते होंगे कि बड़े बेईमान हैं ये फूल! सुबह खिलते हैं, दोपहर गिरने लगते हैं। क्या बेईमानी है! क्या बदलाहट मचा रखी है! सुबह कुछ, दोपहर कुछ, सांझ कुछ हो जाते हैं! हम पत्थरों को देखो, जैसे सुबह थे वैसे अब हैं। वैदिक युग से लेकर अब तक हम पत्थर ही हैं। ये फूलों का कोई भरोसा नहीं। इन फूलों का दिखता है कोई ठिकाना नहीं। इन फूलों के पास कोई आत्मा नहीं है। बस, बदल जाते हैं!

उस बच्चे ने कहा कि वह तो बदल गया, अब मैं क्या करूं? उसके गुरु ने कहा कि यह तो उसे हराना जरूरी है, मैं फिर तुझे उत्तर बताता हूं। तू तैयार करके अगली बार फिर जाना।

लेकिन फिर खयाल न आया कि तैयार उत्तर हार गया था। गुरु को खयाल आया कि वह उत्तर हार गया है। हार गया था तैयार उत्तर, लेकिन गुरु ने समझा कि वह खास उत्तर हार गया है। नासमझ यही समझते रहते हैं कि वह खास उत्तर हार गया तो दूसरा उत्तर काम आ जाएगा, लेकिन उन्हें पता नहीं कि तैयार उत्तर हमेशा हार जाते हैं। तैयार उत्तर हारता है; कोई उत्तर नहीं हारता।

दूसरे दिन उसने कहा कि जब वह पूछे कि जहां पैर ले जाएं तो उससे कहना कि भगवान न करे कि पैर से लंगड़े हो जाओ! अगर लंगड़े हो गए तो कहीं जाओगे कि नहीं?

वह लड़का खुश, फिर जाकर उसी रास्ते पर खड़ा हो गया। देख रहा है, प्रतीक्षा कर रहा है। वह लड़का उस मंदिर से निकला। उसने फिर उससे पूछा कि मित्र, कहां जा रहे हो?

उस लड़के ने कहा, साग-सब्जी लेने बाजार जा रहा हूं।

यह हमारा देश तैयार उत्तरों से पीड़ित है। यहां सब उत्तर तैयार हैं और कोई आदमी जिंदगी के किसी सवाल को सीधा एनकाउंटर, सीधा साक्षात करने के लिए तैयार नहीं है। वे चाहे उत्तर बुद्ध ने तैयार किए हों, चाहे महावीर ने, चाहे कृष्ण ने, चाहे अभी गांधी ने, वे उत्तर सब हमारे पास तैयार हैं और उन उत्तरों को पकड़ कर हम बैठे हैं। इस देश की आत्मा इसीलिए अविकसित रह गई है। इस देश की आत्मा इसीलिए पत्थर हो गई है कि उसने फूल होने का गुण खो दिया है। उसने परिवर्तन की क्षमता खो दी है। वह ठहर गई है, अटक गई है, स्टैटिक हो गई है। और अगर कोई कहे कि छोड़ दो तैयार उत्तरों को तो हम कहेंगे, हमारे महात्माओं को छीनते हो? हमारे गुरुओं को छीनते हो? हमारे तीर्थंकरों को छीनते हो? बड़े दुश्मन हो हमारे!

कोई आपके तीर्थंकर नहीं छीन रहा है; कोई आपके महात्मा नहीं छीन रहा है; लेकिन आप इतने जोर से पकड़े हुए हो कि आपको लगता है कि कहीं छिन न जाए। पकड़ने की वजह से यह डर पैदा होता है कि कहीं छिन न जाए! पकड़ना छोड़ दो, कोई तीर्थंकर नहीं छिनेगा, कोई महात्मा नहीं छिनेगा। वे अपनी हैसियत से कुछ हैं, आपके पकड़ने की वजह से कुछ भी नहीं हैं। लेकिन हम जोर से पकड़े हुए हैं। हम उनको सहारा समझे हुए हैं। गांधी ने कुछ उत्तर दिए थे और गांधी एक अदभुत आदमी थे। मैं मानता हूं कि गांधी ने हिम्मत की थी, उनके पास तैयार उत्तर नहीं थे। हिंदुस्तान में अगर पिछले दो हजार वर्षों में किसी आदमी ने हिंदुस्तान के जीवन को गति दी तो वह आदमी गांधी था। और गति देने का एकमात्र कारण था कि उस आदमी के पास तैयार उत्तर नहीं थे। हिंदुस्तान के दूसरे सारे नेताओं के पास तैयार उत्तर थे, गांधी के पास तैयार उत्तर नहीं था। इसलिए गांधी हिंदुस्तान की जिंदगी में बड़े बेमौजूं थे।

हिंदुस्तान के सभी नेता गांधी से परेशान रहे। हिंदुस्तान के बड़े नेताओं ने गांधी के प्रति पीछे छिप कर हंसी और मजाक भी की कि यह आदमी गड़बड़ है, क्योंकि यह आदमी कब क्या कहेगा, कब क्या करेगा, इसका कोई भरोसा नहीं। यह आदमी बदल जाता है। यह आदमी सुबह कुछ कहता है, सांझ कुछ कहता है। पिछले वर्ष

कुछ कहा था, इस वर्ष कुछ कहने लगता है। यह आदमी भरोसे के योग्य नहीं है। लेकिन गांधी, अकेले आदमी ने इस मुल्क को इतनी गति दी जितनी इस मुल्क के हजारों-लाखों महात्मा मिल कर इसको नहीं दे सकते थे। कैसे दी इस आदमी ने गति?

इस आदमी के गति देने का बुनियादी सूत्र यह था कि इस आदमी के पास तैयार उत्तर नहीं था। यह आदमी जिंदगी को जीने की कोशिश किया; जिंदगी को सामना करने की कोशिश की। जिंदगी से जूझ कर जो उत्तर आया वह इस आदमी ने दिया। लेकिन वह उत्तर भी इसने कभी नहीं माना कि यह अल्टीमेट है, चरम है। इतना ही कहा कि अभी यह सूझता है। कल दूसरा भी सूझ सकता है, परसों तीसरा भी सूझ सकता है। हिंदुस्तान के किसी महात्मा ने कभी इस तरह की भाषा नहीं बोली थी, हिंदुस्तान के महात्मा हमेशा चरम भाषा बोलते हैं। वे कहते हैं कि यह आखिरी उत्तर है, यह सर्वज्ञ की वाणी है। बस इसके आगे अब कुछ भी नहीं है, यह अंतिम हो गया।

गांधी ने बड़ी हिम्मत की और कहा कि यह सर्वज्ञ की वाणी नहीं है, एक खोजी की वाणी है; एक खोजने वाले की। इसलिए अपनी किताब को नाम दिया: सत्य के प्रयोग। सत्य की उपलब्धि नहीं, एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ। भूल-चूक की संभावना है प्रयोग में। भूल-चूक की संभावना को स्वीकार किया।

इस आदमी ने एक अदभुत काम किया। हम इस आदमी के पीछे फिर पड़ गए हैं कि इसने जो अदभुत काम किया था उसको खत्म कर दें, उसकी हत्या कर दें। हम कहते हैं, गांधी का वाद बनाएंगे, हम उत्तर तैयार रखेंगे। जो गांधी ने उत्तर दिया था वही उत्तर हम आगे भी देंगे। बस गांधी की हत्या शुरू हो गई। गांधी का वाद यानी गांधी की हत्या। जिस आदमी का वाद बनाओगे उसी की हत्या हो जाएगी।

और लोग मुझसे कहते हैं कि मैं गांधी का दुश्मन हूं! गांधी का दुश्मन कौन है? जितने लोग गांधी का लेबल लगा कर खड़े हुए हैं वे सब गांधी के दुश्मन हैं। गांधी के लेबल की बिलकुल जरूरत नहीं है, गांधी की जिंदगी को समझने की जरूरत है। और अगर समझेंगे तो पहला सूत्र, पहला सूत्र यह समझ में आएगा कि गांधी के पास तैयार उत्तर नहीं हैं और हमारे पास भी तैयार उत्तर नहीं होने चाहिए। हम भी इस जिंदगी को समझें, और देखें, और पहचानें।

हिंदुस्तान के सारे जगत में पिछड़ जाने के बुनियादी कारणों में से एक कारण यह है। दुनिया में किसी कौम ने अपने उत्तर तैयार नहीं रखे हैं। उन्होंने उत्तर छोड़ने शुरू कर दिए हैं, वे नए उत्तर की खोज में हैं। और हम? हमें जब भी जिंदगी में सवाल उठेगा, भागेंगे फौरन कृष्ण के पास, भागेंगे फौरन महावीर के पास कि क्या है उत्तर। हमारी अपनी कोई आत्मा नहीं है? हमारे पास अपना कोई विकासशील चित्त नहीं है? हमारे देश के पास अपनी कोई क्षमता नहीं है कि हम जिंदगी को समझें और जवाब दें?

नहीं, लेकिन इसमें डर रहता है, नए उत्तर में डर रहता है, भूल हो सकती है। पुराने उत्तर में कोई डर नहीं रहता, भूल नहीं होती।

लेकिन ध्यान रखें कि जो कौम भूल करने की क्षमता खो देती है वह कौम मर जाती है। भूल करने की क्षमता जीवन का लक्षण है। इसलिए मैं कहता हूं कि रोज भूल करना, भूल करने से मत डरना। हां, एक ही भूल दोबारा मत करना, क्योंकि बंधी हुई भूल भी बंधा हुआ उत्तर हो जाती है। जिंदगी तो एक एडवेंचर है, एक खोज है, एक साहस की खोज है, एक अभियान है, जहां बहुत भूलें होंगी। भूलों से हम सीखेंगे और आगे बढ़ेंगे। अगर हमने भूलें ही नहीं कीं तो फिर हम सीखेंगे नहीं और आगे नहीं बढ़ेंगे।

और इसलिए हम सुरक्षा चाहने वाले लोग किसी को पकड़ लेते हैं और कहते हैं, तुम्हारे उत्तर सदा के लिए हो गए, अब हम दोबारा नए उत्तर न खोजेंगे। नए उत्तरों में खतरा रहता है, असुरक्षा रहती है, भूल हो सकती है। महात्मा का दिया हुआ उत्तर है, इसको जोर से पकड़ लो। महात्माओं के दिए ताबीज हम पकड़ते थे, वह इतना खतरनाक नहीं था; क्योंकि महात्माओं के ताबीज बिलकुल बेकार हैं उनसे कोई खतरा नहीं है। लेकिन महात्माओं के दिए उत्तर अगर मुल्क ने पकड़े तो मुल्क का विकास अवरुद्ध हो जाएगा; मुल्क आगे नहीं जा सकता है।

मैं गांधी का दुश्मन नहीं हूं। गांधी से जैसा मेरा प्रेम है, बहुत कम लोगों का हो सकता है। लेकिन प्रेम को प्रकट करने का हम एक ही रास्ता जानते हैं कि किसी आदमी की पत्थर की मूर्ति बना कर उस पर फूल चढ़ाओ। प्रेम का हम एक ही रास्ता जानते हैं कि पूजा करो। प्रेम का हम एक ही रास्ता जानते हैं कि किसी आदमी को भगवान बना दो, बस प्रेम पूरा हो गया। और मैं आपसे कहता हूं कि यह प्रेम का रास्ता नहीं है, यह किसी आदमी से बचने की तरकीब है।

जिस आदमी से बचना हो उसको भगवान बना दो। भगवान होते ही हमारी झंझट के बाहर हो गया। हम आदमी रह गए, वह भगवान हो गया। हमारे उसके बीच फिर कोई कम्युनिकेशन, कोई संवाद का वाहन नहीं रहा, कोई बीच का माध्यम नहीं रहा। वह भगवान हो गया, बात खत्म हो गई। हमने पहले भी अच्छे आदमियों से इसी तरह छुटकारा पाया है। कृष्ण को भगवान बना दिया, मामला खत्म हो गया। महावीर को तीर्थंकर बना दिया, मामला खत्म हो गया। फिर महावीर जो करते हैं, हम कह सकते हैं कि वे तीर्थंकर हैं इसलिए करते हैं; हम साधारण आदमी हैं, हम क्या कर सकते हैं! हम सिर्फ पूजा कर सकते हैं।

कृष्ण? कृष्ण भगवान के अवतार हैं। राम भगवान के अवतार हैं। वे कुछ भी कर सकते हैं। लीला है उनकी, वे सब कर सकते हैं। हम? हम साधारण आदमी हैं, हम क्या कर सकते हैं! राम से बचने की तरकीब देखी आपने? कृष्ण से बचने की तरकीब देखी? बड़ा कनिंग, बड़ा चालाकी से भरा हुआ रास्ता खोजा हमने। और चालाकी यह है कि आदमी को भगवान बना दो, अपनी सीमा के बाहर खदेड़ दो। उस आदमी को हमने आदमियत के बाहर कर दिया। और आदमियत के जो बाहर हो गया, उससे फिर हमारा कोई लेन-देन नहीं रह जाता। सिर्फ एक लेन-देन रहता है कि पूजा कर लेते हैं, वर्ष में कभी एक दिन त्यौहार मना लेते हैं, शोरगुल मचा देते हैं, बात खत्म हो जाती है। उस आदमी से हमें कुछ प्रयोजन नहीं रह जाता।

मैं आपसे कहना चाहता हूं कि गांधी को भगवान नहीं बनने देना है। बड़ी कोशिश करनी है कि गांधी भगवान न बन जाएं, ताकि गांधी इस देश के काम आ सकें। गांधी को आदमी ही रहने देना है। लेकिन गांधी के पीछे चलने वाले लोग बड़ी कोशिश में लगे हैं उन्हें भगवान बनाने में। भगवान बनाने से हमारा उनसे छुटकारा हो जाएगा। पूजा करना किसी आदमी की, बस यह मान लेना है कि यह आदमी नहीं था और हम आदमी हैं। हम आदमी हैं और यह आदमी नहीं था, बस बात खत्म हो गई।

हिंदुस्तान ने अपने सब श्रेष्ठ पुरुषों को भगवान बना कर बिठाल दिया, इसलिए हिंदुस्तान का आदमी श्रेष्ठ नहीं हो सका। हिंदुस्तान के आदमी को देखते हैं? जहां इतने बड़े लोग हुए वहां का आदमी इतना छोटा और दीन-हीन क्यों है? कभी इस पर कोई विचार किया आपने? जहां महावीर होते हों, जहां बुद्ध चरण रखते हों, जहां गांधी जैसे अदभुत आदमी के फूल खिलते हों, जहां करोड़ों-अरबों अदभुत लोग पैदा हुए हों, वहां की मनुष्यता की क्या हालत है! वहां का मनुष्य कैसा दीन-हीन और जमीन पर रेंगता हुआ है!

हमको शर्म भी नहीं आती जब हम कहते हैं कि हम बुद्ध, महावीर और कृष्ण और राम के देश के लोग हैं! हमको शर्म भी नहीं आती। हमें देख कर शक होता है कि न कभी राम हुए होंगे, न कभी बुद्ध हुए होंगे, न कभी कृष्ण हुए होंगे। हमें देख कर सबूत नहीं मिलता उनके होने का। हमें देख कर ऐसा लगता है कि ये सब कहानियां हैं मनगढ़ंत। हमें देख कर क्या सबूत मिलता है? हमें देख कर सबूत मिलता है कि महावीर पैदा हुए होंगे हमारे बीच? नहीं साहब, महावीर की वजह से आप बड़े नहीं हो सकते, आपकी वजह से महावीर छोटे हो सकते हैं; क्योंकि आप बहुत हैं, महावीर बिलकुल एक हैं।

लेकिन यह दुर्भाग्य कैसे हुआ?

यह दुर्भाग्य ऐसे हुआ कि जिन लोगों के कारण यह मनुष्यता ऊपर उठ सकती थी उनको हमने मनुष्यता के बाहर कर दिया। और तब हम अपनी मनुष्यता के घेरे में छोटे रहने में सुखी हो गए, हम छोटे रहने में तृप्त हो गए, छोटा रहना हमारी नियति हो गई। कुछ लोगों का बड़ा होना नियति है, हमारा छोटा होना नियति है।

हिंदुस्तान को अपने सब भगवानों को नीचे उतार कर मनुष्य की भूमि पर खड़ा करना पड़ेगा। महावीर को उतार लाना पड़ेगा अपने बीच कि वे हमारी भीड़ में खड़े हो जाएं। इससे महावीर छोटे नहीं होंगे, इससे हमारे बड़े होने की संभावना बढ़ती है।

एक एक कदम

यह दुर्भाग्य, यह बहुत ही अभागी स्थिति है इस देश की कि जहां इतने अदभुत लोग हों वहां की आदमियत इतनी छोटी हो। क्या कारण है?

और कभी-कभी मैं सोचता हूं कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि ये इतने-इतने बड़े लोग इसीलिए इतने बड़े दिखाई पड़ते हैं कि हम बहुत छोटे हैं! जैसे स्कूल में काली तख्ती रहती है, ब्लैक-बोर्ड; सफेद खड़िया से शिक्षक उस पर लिखता है, सफेद दीवार पर नहीं लिखता। सफेद दीवार पर भी लिखेगा तो लिख तो जाएगा लेकिन दिखाई नहीं पड़ेगा। दिखाई पड़ेगा काले ब्लैक-बोर्ड पर सफेद खड़िया का लिखा हुआ। कहीं ऐसा तो नहीं है कि ये महात्मा इतने बड़े महात्मा दिखाई पड़ते हैं हमारे ब्लैक-बोर्ड पर! यह दीन-हीन लोगों का जो इतना बड़ा समूह है इसमें एक आदमी बड़ा होकर दिखाई पड़ने लगता है, क्योंकि वह सफेद और हमारा ब्लैक-बोर्ड, उसमें वह बहुत बड़ा हो जाता है।

दुनिया में किसी देश में इतने महापुरुष पैदा नहीं होते जितने हमारे यहां पैदा होते हैं। इसमें कुछ शक की बात है। इसमें पहली शक की बात यह है कि हमारी मनुष्यता बहुत नीची है। इसलिए एक आदमी जरा ही ऊपर उठता है तो बहुत बड़ा दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। और हमारी मनुष्यता इतनी नीची है कि हम उस आदमी का खूब गुणगान करने लगते हैं। क्यों? क्योंकि उस गुणगान में भी हम अपने अहंकार को तृप्ति देने की कोशिश करते हैं।

गांधी जी गोलमेज कांफ्रेंस में इंग्लैंड गए थे। गांधी जी के एक सेक्रेटरी बर्नार्ड शॉ से मिलने गए। बर्नार्ड शॉ से उन्होंने पूछा...।

शिष्य हमेशा ही ऐसा पूछते हैं। शिष्य हमेशा पूछते हैं कि हमारे महात्मा के बाबत क्या खयाल है? महात्मा की फिक्र नहीं होती, फिक्र इस बात की होती है कि अगर हमारा महात्मा बड़ा है तो हम बड़े महात्मा के बड़े शिष्य हैं! जो मजा...मजा बहुत दूसरा होता है।

सेक्रेटरी ने बर्नार्ड शॉ से पूछा कि महात्मा गांधी के बाबत आपका क्या खयाल है, आप उनको महात्मा मानते हैं? वह बर्नार्ड शॉ तो बहुत अदभुत आदमी था। उसने कहा, महात्मा? महात्मा मानता हूं, लेकिन नंबर दो; नंबर एक का तो मैं ही हूं।

सेक्रेटरी बहुत हैरान हुए होंगे कि कैसा आदमी है यह! यह कहता है कि नंबर एक का मैं हूं और नंबर दो के गांधी हैं! और दो ही महात्मा हैं दुनिया में, ज्यादा भी नहीं हैं; लेकिन वे नंबर दो, नंबर एक मैं हूं।

बहुत दुखी लौटे और गांधी को आकर कहा कि बर्नार्ड शॉ तो बहुत अजीब सा आदमी मालूम पड़ता है, बहुत अहंकारी मालूम पड़ता है। मैंने पूछा तो उसने यह कहा कि मैं नंबर एक हूं, आप नंबर दो। गांधी ने कहा कि वह ठीक कहता है, वह सच्चा आदमी है, सबके मन में खयाल तो यही रहता है कि नंबर एक हम हैं। लेकिन कहने की हिम्मत लोग कम जुटा पाते हैं। उसने ठीक बात कह दी।

और इस आदमी को चोट क्यों लगी गांधी के नंबर दो होने से? चोट लगी इसलिए कि नंबर दो महात्मा के शिष्य हो गए। जब आदमी के पास कुछ नहीं रह जाता तो झूठे सब्स्टीटयूट खोजता है ऊंचे होने की। हम चिल्लाते हैं कि हमारा महावीर, हमारा बुद्ध बहुत महान हैं। क्यों? क्योंकि हमारा है। और हमारा है तो हम भी उसके साथ महान होने का मजा ले लेते हैं। आदमी की तरकीबें अहंकार की बहुत अदभुत हैं।

एक आदमी पेरिस विश्वविद्यालय में फिलासफी का प्रोफेसर था। और उसकी बात मुझे इतनी प्रीतिकर लगती है। एक दिन सुबह ही आकर उसने अपनी क्लास के विद्यार्थियों को कहा कि तुम्हें कुछ खबर मिली, मुझसे बड़ा आदमी इस दुनिया में दूसरा नहीं है। विद्यार्थी समझे कि दिमाग खराब हो गया। एक तो फिलासफी की तरफ दिमाग खराब लोग ही उत्सुक होते हैं और इनका डर रहता ही है कि कभी भी दिमाग खराब हो जाए। असल में जो दिमाग से काम करेगा उसी के तो खराब होने का डर रहता है। जो दिमाग से काम ही नहीं करेंगे उनका खराब कैसे होगा। लड़के समझे कि दिमाग गड़बड़ हो गया, बेचारा गरीब प्रोफेसर है, ये दुनिया का सबसे बड़ा आदमी कैसे हो गया।

राजनीतिज्ञ अगर दुनिया में कहते फिरते हैं कि हमसे बड़ा कोई भी नहीं है तो कोई नहीं फिक्र करता उनकी, क्योंकि उनका दिमाग खराब होता ही है। लेकिन दर्शनशास्त्र का प्रोफेसर कहने लगे! तो लड़कों ने पूछा कि आप कह रहे हैं यह! आप दुनिया के सबसे बड़े आदमी हैं?

उसने कहा, न मैं केवल कह रहा हूं, मैं सिद्ध कर सकता हूं। क्योंकि मैं बिना सिद्ध किए कोई बात कहता ही नहीं हूं।

उन्होंने कहा, तो आप कृपा करें और सिद्ध कर दें।

लड़कों को बहुत कठिनाई थी कि वह कैसे सिद्ध करेगा! लेकिन उन्हें पता नहीं, उस प्रोफेसर ने बड़ा व्यंग्य किया, बड़ा मजाक किया। दुनिया में कुछ अच्छे लोग बड़े व्यंग्य कर जाते हैं, लेकिन फिर भी हमें पता नहीं चलता।

उस आदमी ने, उस प्रोफेसर ने उठ कर बोर्ड पर गया जहां दुनिया का नक्शा लटका हुआ था। और विद्यार्थियों को कहा कि इस बड़ी दुनिया में सबसे श्रेष्ठ देश कौन-सा है? सभी फ्रांस के रहने वाले थे, उन्होंने कहा, फ्रांस। स्वभावतः, फ्रांस में रहने वाला आदमी यही समझता है कि फ्रांस सबसे बड़ा देश है, क्योंकि फ्रांस में रहने वाला यह कैसे मान सकता है कि जहां वह रहता है वह देश बड़ा न हो! जहां वह रहता है वह देश तो बड़ा होना ही चाहिए। इतना बड़ा आदमी जहां रहता है! फ्रांस सबसे बड़ा देश है।

उस प्रोफेसर ने कहा, तो फिर बाकी दुनिया की बात खत्म हो गई। अब अगर मैं सिद्ध कर दूं कि फ्रांस में मैं सबसे बड़ा हूं तो मैं सिद्ध हो जाऊंगा कि दुनिया में सबसे बड़ा हूं।

तब भी विद्यार्थी नहीं समझ पाए कि वह कहां ले जा रहा है।

फिर उसने कहा कि फ्रांस में सबसे श्रेष्ठ नगर कौन-सा है?

तब विद्यार्थियों को शक हुआ। वे सभी पेरिस के रहने वाले थे। उन्होंने कहा, पेरिस।

तब उन्हें थोड़ा शक हुआ कि मामला गड़बड़ हुआ जा रहा है।

उस प्रोफेसर ने कहा, और पेरिस में सबसे श्रेष्ठ स्थान कौन-सा है?

निश्चित ही, विद्या का केंद्र, विश्वविद्यालय, युनिवर्सिटी।

तो उसने कहा, अब युनिवर्सिटी ही रह गई सिर्फ। और युनिवर्सिटी में सबसे श्रेष्ठ सब्जेक्ट, सबसे बड़ा विषय कौन-सा है?

फिलासफी, दर्शनशास्त्र।

और उसने कहा, मैं दर्शनशास्त्र का हेड ऑफ दि डिपार्टमेंट हूं। मैं इस दुनिया का सबसे बड़ा आदमी हूं!
आदमी का अहंकार कैसे-कैसे रास्ते खोजता है! जब आप कहते हैं, हिंदू धर्म सबसे बड़ा है तो भूल कर यह मत सोचना कि आपको हिंदू धर्म से कोई मतलब है, आपको मतलब खुद से है। आप हिंदू हैं और हिंदू धर्म को महान कह कर अपने को महान कहने की तरकीब खोज रहे हैं। और जब आप कहते हैं कि हमारा भगवान सबसे बड़ा और हमारा महात्मा सबसे बड़ा, तो आपको न भगवान से कोई मतलब है, न महात्मा से कोई मतलब है। आप कहते हैं कि मेरा महात्मा, मैं इतना बड़ा आदमी हूं कि मेरा महात्मा छोटा कैसे हो सकता है? यह जो दुनिया में झगड़ा है हिंदू-मुसलमान का, ईसाई का, जैन का, बौद्ध का, सिक्ख का, यह झगड़ा महात्माओं का झगड़ा नहीं है, यह महात्माओं के आधार पर बड़े होने वाले लोगों के अहंकार का झगड़ा है। इसलिए जब अगर मैं कहूं कि महात्मा गांधी को नीचे लाना है, नहीं ले जाना है स्वर्ग पर, वे पृथ्वी के बड़े काम के हैं; उनकी जड़ें पृथ्वी में ही रखना है, नहीं ले जाना है स्वर्ग में। जब मैं कहूं महावीर को पृथ्वी से जोड़ना है, तो हमें बड़ा कष्ट होता है। क्योंकि हम उनको आकाश में समझ कर अपने को भी आकाश में समझने का जो सपना देख रहे थे वह टूट जाता है।

नहीं, मैं गांधी का दुश्मन नहीं हूं। मैं चाहता हूं, गांधी इस पृथ्वी के नमक बनें। मैं चाहता हूं कि गांधी पर हम सोचें, मैं चाहता हूं गांधी से हम सीखें। गांधी को मानें नहीं, गांधी से सीखें। और गांधी से अगर कोई बड़ी से बड़ी बात सीखी जा सकती है तो वह यह कि जिंदगी रोज नए उत्तर मांगती है, जिंदगी रोज नई चेतना

मांगती है, जिंदगी बंधी हुई धाराओं में नहीं रुकना चाहती है। और जो कौम रुक जाती है, वह जिंदगी से पिछड़ जाती है और मर जाती है।

भारत एक मरा हुआ देश है। हमारा जो अस्तित्व है वह पोस्थुमस है, मरने के बाद का है। हम हजारों साल से मुर्दे की तरह जी रहे हैं। हमने जिंदगी की धारा खो दी है। रूस के बच्चों से पूछो जाकर कि क्या कर रहे हो? तो बच्चे सोच रहे हैं कि चांद पर कैसे बस्ती बसाएं। अमरीका के बच्चों से पूछो, तो वे सोच रहे हैं कि अंतरिक्ष में कैसे उपनिवेश बसेंगे। और हमारे बच्चों से? हमारे बच्चे रामलीला देख रहे हैं! आंख पीछे की तरफ लगी है। राम बहुत प्यारे हैं, लेकिन रामलीला देख कर जो कौम रुक जाती है, वह मर जाती है। अभी और रामलीलाएं होंगी। अभी भविष्य में और राम पैदा होंगे, पुराने रामों से बहुत नए। भगवान थक नहीं गया है। और भगवान और नए राम पैदा करेगा। और भगवान कभी भी पुरानी चीज को दोहराता नहीं, हमेशा श्रेष्ठतर को पैदा करता चला जाता है। अभी और रामलीलाएं होंगी अंतरिक्ष के न मालूम किन तारों पर, न मालूम किन ग्रहों पर! लेकिन वे रामलीलाएं अमरीका और रूस के बच्चे देखेंगे। हमारे बच्चों को वह सौभाग्य नहीं मिल सकता है। हमारे बच्चे तो तृप्त हैं, अतीत की रामलीला को देख कर ही शांत हो जाते हैं।

मैं चाहता हूं, यह अतीत-उन्मुखी देश भविष्य-उन्मुखी हो जाए। मैं चाहता हूं, ये आंखें जो पीछे की तरफ जकड़ कर खड़ी रह गई हैं, ये आगे की तरफ देखने लगें।

भगवान ने बड़ी गलती की है कि हमारी आंखें आगे की तरफ लगाईं। अगर वह चेंथी पर पीछे लगा देता तो हम बड़े खुश होते, क्योंकि आगे हमको देखना नहीं, हम तो पीछे की, रास्तों की उड़ती धूल को देखते हैं--उन रथों को जो निकल चुके, उन कथाओं को जो हो चुकीं। वह सब जो हो चुका वही हमारी आंखों में है, जो होने को है वह हमारी आंखों में नहीं है।

कब तक हम पीछे को पकड़ कर रुके रहेंगे? गांधी हो चुके, अब उनको पकड़ कर रुकने का मतलब फिर वही रामलीला पर रुक जाने का मतलब होगा।

नहीं, हम और गांधी पैदा करेंगे, हम और राम पैदा करेंगे, हम और महावीर पैदा करेंगे; हमारी आत्मा चुक नहीं गई है, हमारे पास अभी पैदा करने की क्षमता बहुत है। हम पीछे नहीं रुकेंगे, हम आगे की तरफ उन्मुख होंगे।

जब मैं यह कहता हूं तो लोग समझते हैं, शायद मैं जो पीछे हो चुके उनका दुश्मन हूं। मैं उनका दुश्मन नहीं हूं। आप हैं उनके दुश्मन जो उनको पकड़ लेते हैं; क्योंकि उनको पकड़ने की वजह से वे लोग और पैदा हो सकते थे वे अब पैदा नहीं हो पाते। भविष्य की तरफ चाहिए दृष्टि।

इन आने वाले तीन दिनों में यह भविष्य-उन्मुख समाज कैसे निर्मित होगा, इस समाज के निर्माण के क्या सूत्र होंगे, इस समाज की क्रांति के क्या आधार होंगे, उस संबंध में मैं बातें करूंगा। अभी तो मैंने प्राथमिक बात कही। और अगर प्राथमिक बात में ही गड़बड़ हो गई होगी समझने में, तो फिर बड़ी मुश्किल है। और कुछ बातें कहूंगा। इतनी ही प्रार्थना करूंगा कि समझने की सिर्फ कोशिश करें, मानने की कोई जरूरत नहीं है। न मैं कोई गुरु हूं, न मैं कोई नेता हूं, और न मुझे नेता होने का पागलपन है। मैं तो मानता ही यह हूं कि सिर्फ वे ही लोग नेता होना चाहते हैं जो किसी तरह की इनफीरिआरिटी कांप्लेक्स, किसी तरह की हीनता की ग्रंथि से पीड़ित होते हैं। वे ही लोग सिर्फ नेता होना चाहते हैं। और नेता होना इस मुल्क में अब इतना सरल है कि कोई आदमी अब नेता नहीं होना चाहेगा।

एक छोटी-सी कहानी और अपनी बात पूरी करूंगा। मैंने सुना है, एक गधे ने अखबार पढ़ना सीख लिया था। मुझे भी हैरानी हुई कि गधे ने अखबार पढ़ना कैसे सीख लिया! लेकिन फिर मुझे पता चला कि गधे और कुछ कर भी तो नहीं सकते हैं सिवाय अखबार पढ़ने के। गधा अखबार पढ़ने लगा तो गधा ज्ञानी हो गया। बहुत-से गधे अखबार पढ़ कर ही ज्ञानी हो जाते हैं। जब वह अखबार पढ़ने लगा तो वह भाषण देना भी सीख गया। क्योंकि अखबार जो पढ़ लेता है वह भाषण भी दे सकता है। भाषण में और कुछ तो करना नहीं पड़ता, अखबार जो आपके दिमाग में डाल दें उसे मुंह से निकाल देना पड़ता है। और फिर गधे के पास तो बहुत सशक्त मुंह है, शास्त्रीय कला है। वह भाषण देने लगा। और जब वह भाषण देना सीख गया तो उसने सोचा कि अब छोटे-मोटे

एक एक कदम

गांव में क्या रहना, दिल्ली की तरफ चलना चाहिए। क्योंकि गधों को जैसे ही बोलना आ जाए, अखबार पढ़ना आ जाए, वे एकदम दिल्ली की तरफ जाने शुरू हो जाते हैं। वह गधा एकदम दिल्ली पहुंचा। गधों को दिल्ली पहुंचने से रोकना भी बहुत मुश्किल है। क्योंकि उस गधे ने दस-पच्चीस और आस-पास के गधे इकट्ठे कर लिए थे। और जिसके पास भीड़ है वह नेता है। वह दिल्ली पहुंच गया।

यह जरा पुरानी बात है, पंडित नेहरू जिंदा थे। वह पंडित नेहरू के मकान पर सीधा पहुंच गया। संतरी खड़ा हुआ था द्वार पर, वह आदमियों को रोकने के लिए था, गधों को रोकने के लिए नहीं! उसने गधे की कोई फिक्र न की। संतरी गधों की फिक्र नहीं कर रहे हैं और गधे महलों में घुस जाते हैं। वह गधा अंदर घुस गया। पंडित नेहरू सुबह ही सुबह अपनी बगिया में टहलते थे। उस गधे ने पीछे से जाकर कहा, पंडित जी!

पंडित जी बहुत घबड़ाए, क्योंकि न वे भूत-प्रेत में मानते थे, न भगवान में मानते थे। चारों तरफ चौंक कर उन्होंने देखा। उन्होंने कहा कि क्या मामला है? यह आवाज कहां से आती है? क्योंकि मैं भूत-प्रेत में मानता ही नहीं। कौन बोल रहा है?

वह गधा डर गया। उसने कहा कि मैं बहुत डर रहा हूं, शायद आप नाराज न हो जाएं। मैं एक बोलता हुआ गधा हूं। आप नाराज तो नहीं होंगे?

पंडित नेहरू ने कहा कि मैं रोज बोलते हुए गधों को इतना देखता हूं कि नाराज होने का कोई कारण नहीं है। किसलिए आए हो?

उस गधे ने कहा कि मैं बहुत डरता था कि आप मुझसे मिलेंगे या नहीं मिलेंगे! आपकी बड़ी कृपा, आप मुझे मिलने का वक्त दे सकते हैं? मैं एक गधा हूं, मिलने का वक्त मिल सकता है?

पंडित नेहरू ने कहा, यहां गधों के अतिरिक्त मिलने के लिए आता ही कौन है! अच्छे आए, क्या प्रयोजन है?

उस गधे ने कहा, मैं नेता बनना चाहता हूं।

पंडित नेहरू ने कहा कि बिलकुल ठीक है। गधे होने का यही लक्षण है कि आदमी नेता बनना चाहता है!

यह सारा का सारा देश नेता बनने की कोशिश में है। इस देश को नेताओं की जरूरत नहीं है। इस देश को अनुयायियों की, भीड़ की भी जरूरत नहीं है। इस देश को अब उन लोगों की जरूरत है जो विचार करते हैं। इस देश को अब उन लोगों की जरूरत है जो विचार के बीज फेंकते हैं। इस देश को उन लोगों की जरूरत है जो इस देश के सोए हुए विचार को जगाएं। इस देश को एक विचार की क्रांति की जरूरत है। इस मुल्क को राजनीति की नहीं, एक आत्मिक क्रांति की जरूरत है।

मेरी उत्सुकता राजनीति में नहीं है, न मेरी उत्सुकता नेताओं में है, मेरी उत्सुकता इस देश की सोई हुई आत्मा में है। और उस आत्मा को जितनी भी चोट मैं दे सकूं, मैं देना जारी रखूंगा। आप गाली दें, नाराज हों, वह सब मैं स्वीकार कर लूंगा। लेकिन मेरी कोशिश जारी रहेगी कि इस मुल्क की आत्मा को कहीं से चोट लगे, कहीं से जीवन विकसित हो, कहीं से यह देश सोचे और जगे और हम दुनिया की दौड़ में पिछड़ न जाएं। हम बहुत पिछड़ गए हैं।

इन तीन दिनों में जीवन और समाज की क्रांति के कुछ सूत्रों पर बात करनी है। आपने आज मेरी प्राथमिक बात इतनी शांति और प्रेम से सुनी, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

एक एक कदम

समाज परिवर्तन

के

चौराहे

पर

मेरे प्रिय आत्मन् ,

समाज परिवर्तन के चौराहे पर--इस संबंध में थोड़ी-सी बातें कल मैंने आपसे कहीं। आज सबसे पहले यह आपसे कहना चाहूंगा कि समाज बाद में बदलता है, पहले मनुष्य का मन बदल जाता है। और हमारा दुर्भाग्य है कि समाज तो परिवर्तन के करीब पहुंच रहा है, लेकिन हमारा मन बदलने को बिलकुल भी राजी नहीं है। समाज के बदलने का सूत्र ही यही है कि पहले मन बदल जाए, क्योंकि समाज को बदलेगा कौन?

चेतना बदलती है पहले, व्यवस्था बदलती है बाद में। लेकिन हमारी चेतना बदलने को बिलकुल भी तैयार नहीं है। और बड़ा आश्चर्य तो तब होता है कि वे लोग, जो समाज को बदलने के लिए उत्सुक हैं, वे भी चेतना को बदलने के लिए उत्सुक नहीं हैं। शायद उन्हें पता ही नहीं है कि चेतना के बिना बदले समाज कैसे बदलेगा! और अगर चेतना के बिना बदले समाज बदल भी गया तो वह बदलाहट वैसी ही होगी, जैसा आदमी न बदले और सिर्फ वस्त्र बदल जाएं, कपड़े बदल जाएं। वह बदलाहट बहुत ऊपरी होगी और हमारे भीतर प्राणों की धारा पुरानी ही बनी रहेगी।

इस देश का मन समझना जरूरी है तभी उस मन को बदलने की बात भी हो सकती है; क्योंकि जिसे बदलना हो उसे ठीक-से समझ लेना आवश्यक है। इस देश का मन अब तक कैसा था? क्योंकि उस मन के कारण ही यह देश जैसा रहा, वैसा रहा। यह देश अगर नहीं बदला पांच हजार वर्षों तक, अगर इस देश में कोई क्रांति नहीं हुई, तो कारण इसकी चेतना में कुछ तत्व थे जिनके कारण क्रांति असंभव हो गई। और वे तत्व अभी भी मौजूद हैं। इसलिए क्रांति की बात सफल नहीं हो सकती जब तक वे तत्व भीतर से टूट न जाएं।

जैसे, इस देश का मन-मानस, प्रतिभा--पूरे अतीत के इतिहास में, विचार पर नहीं विश्वास पर आधारित रही है। और जो देश, जो मन, जो चेतना विश्वास पर आधारित होती है, वह अनिवार्यरूपेण अंधी हो जाती है; उसके पास सोच-विचार की क्षमता क्षीण हो जाती है। मनुष्य के जीवन का यह अनिवार्य वैज्ञानिक अंग है कि हम जिन अंगों का उपयोग करते हैं वे विकसित होते हैं, जिन अंगों का उपयोग नहीं करते हैं वे पंगु हो जाते हैं। एक बच्चा पैदा हो और उसके पैर हम बांध दें, बीस साल बाद उसके पैर खोलें तो उसके पैर मर चुके होंगे; वह उन पैरों से कभी भी न चल सकेगा। और यह भी हो सकता है कि बीस साल बाद हम उससे कहें कि इसीलिए तो हमने तेरे पैर बांधे थे कि तू पैरों से चल ही नहीं सकता है। और तब वह भी हमारी बात पर भरोसा करेगा; क्योंकि चल कर देखेगा और गिरेगा। अगर आंखें बंद रखी जाएं बीस वर्षों तक तो आंखें रोशनी खो देंगी। हम जिस हिस्से का प्रयोग बंद कर देंगे वह समाप्त हो जाएगा। जीवन का आधारभूत नियम है कि हम जिस हिस्से का जितना प्रयोग करते हैं, वह उतना विकसित होता है।

यह जिंदगी ऐसी है, जैसे कोई आदमी साइकिल चलाता है। वह जब तक पैडल चलाता है तब तक साइकिल चलती है; पैडल रोक लेता है, तो साइकिल भी रुक जाती है। ऐसा नहीं है कि आपने दो घंटे पैडल चला लिए तो अब कोई चलाने की जरूरत नहीं है! पैडल चलाते ही रहना पड़ेंगे।

मनुष्य की प्रतिभा विचार से विकसित होती है, विश्वास से कुंठित हो जाती है। भारत का मन आज भी विश्वासी है। ऐसा नहीं है कि बूढ़ा आदमी विश्वासी है। जिसे हम युवक कहते हैं, वह भी उतना ही विश्वासी है। और तब बहुत ही निराशा भी प्रतीत होती है कि क्या हो सकेगा!

युवक इतना विद्रोह करते हुए दिखाई पड़ते हैं, वह विद्रोह बहुत ऊपरी है। उस विद्रोह में बहुत गहरे प्राण नहीं हैं, क्योंकि भीतर उस युवक के मन में भी वही विश्वास की दुनिया अभी भी खड़ी हुई है।

एक एक कदम

मैं एक इंजीनियर के घर का उदघाटन करने गया था। बड़े इंजीनियर हैं, जर्मनी से शिक्षित हुए हैं, और पंजाब के एक बड़े नगर में उन्होंने एक मकान बनाया है। मेरे लिए रुके थे कि मैं आऊं तो उनके मकान का उदघाटन कर दूं। मैं गया, उनके मकान का फीता काट रहा था, तब मैंने देखा कि मकान के सामने एक हंडी लटकी हुई है! हंडी के ऊपर आदमी के बाल हैं और हंडी पर आदमी का चेहरा बना हुआ है! मैंने पूछा, यह क्या है?
उन्होंने कहा कि मकान को नजर न लग जाए!
मैंने कहा कि इंजीनियर होकर तुम जर्मनी से लौटे! मकान को भी नजर लगती है?
वे कहने लगे कि नहीं, मैं तो नहीं मानता हूं, लेकिन और सब लोग कहते हैं तो मैंने सोचा हर्ज क्या है!
मैंने कहा, हर्ज बहुत बड़ा है। क्योंकि जब जर्मनी से लौटा हुआ इंजीनियर भी मकान को नजर लगने का इंतजाम करता हो बचाने का, तो पास-पड़ोस का ग्रामीण आदमी क्या करेगा? उसे भरोसा मिलेगा कि ठीक है। तुम शिक्षित होकर अशिक्षित मान्यताओं को बल दे रहे हो।
मैं एक डाक्टर के घर में मेहमान था कलकत्ते में। सांझ को निकलता था, मुझे लेकर जा रहे थे, उनकी लड़की को छींक आ गई। उन्होंने कहा, एक मिनट रुक जाएं!
मैंने उनसे कहा, आप डाक्टर हो और भली-भांति जानते हो कि आपकी लड़की की छींक से मेरा कोई भी लेना-देना नहीं है। और आपकी लड़की को छींक आए तो किसी के रुकने की कोई जरूरत नहीं है। और भली-भांति जानते हो कि छींक के आने के कारण क्या हैं।
डाक्टर ने कहा, भली-भांति जानता हूं कि छींक क्यों आती है। लेकिन रुकने में हर्ज क्या है?
वह हमारा जो भीतर गहरे में दबा हुआ मन है, वह समझौता खोज रहा है, कंप्रोमाइज खोज रहा है। अब ये डाक्टर का चेतन मन जानता है कि छींक का क्या अर्थ है, लेकिन इसका अचेतन है, इसका अनकांशस है जो समाज ने इसे दिया था। वह कहता है, रुक भी जाओ, दोनों के बीच समझौता कर लो। जानते हैं कि छींक क्यों आई है, लेकिन फिर भी, न जानने के समय में जो विश्वास बनाया था, वह भी काम कर रहा है; वह भी हटता नहीं है।
विद्यार्थी आंदोलन करेगा, मोर्चे उठाएगा, हड़तालें करेगा, विरोध करेगा, कांच तोड़ेगा, बसें जलाएगा--और परीक्षा के समय वह भी हनुमान जी के मंदिर के पास दिखाई पड़ेगा! परीक्षा के वक्त वह भी हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगेगा। परीक्षा के समय उसे भी परमात्मा वापस सार्थक मालूम होने लगेगा।
हमारा ऊपर का मन तो शिक्षित हुआ है, उसने थोड़ा-बहुत सोच-विचार शुरू किया है, लेकिन भीतर का गहरा मन अब भी विश्वास में दबा है। उस गहरे मन को बिना बदले हुए यह समाज परिवर्तित नहीं हो सकता है। क्यों? क्योंकि विश्वास के अपने नियम हैं, विचार के अपने नियम हैं। विचार में विद्रोह छिपा है सदा। विचार विद्रोही है। आप विचार करेंगे तो विद्रोही हो ही जाएंगे। अगर विचार किया तो आपको बहुत चीजें गलत दिखाई पड़ने लगेंगी। और जो गलत दिखाई पड़ने लगेगा उसके साथ खड़े रहना असंभव हो जाएगा।
इसलिए दुनिया के सभी शोषक--चाहे वे राजनेता हों और चाहे धर्मगुरु हों--मनुष्य के मन को विचार करने से रोकने का सारा इंतजाम करते हैं; क्योंकि विचार विद्रोह ले आएगा। आज नहीं कल, विचार के पीछे विद्रोह की छाया आने ही वाली है। इसलिए विचार को ही तोड़ दो, ताकि विद्रोह न आ सके। और विचार की जगह विश्वास के बीज बोओ, क्योंकि विश्वास कभी विद्रोह नहीं करता; विश्वास विद्रोह कर ही नहीं सकता। जितना बिलीविंग माइंड है, जितना विश्वास करने वाला चित्त है, उतना अविद्रोही, प्रतिगामी, रिएक्शनरी, पुराने को पकड़ कर रुका रहने वाला मन होता है।
हम अब भी विश्वासी हैं, इसलिए समाज बदलेगा नहीं। समाज के वस्त्र ही बदल पाएंगे, आत्मा नहीं। और आत्मा पुरानी हो और वस्त्र नए हो जाएं तो अत्यंत बेचैनी शुरू हो जाती है, क्योंकि समाज का व्यक्तित्व तब सीजोफ्रेनिक हो जाता है; समाज के व्यक्तित्व के दो हिस्से हो जाते हैं। और जब विपरीत हिस्से एक ही साथ समाज में हो जाते हैं, तब भीतर इनर टेंशन और एक आंतरिक तनाव और विरोध और द्वंद्व और तकलीफ शुरू हो जाती है।

यह हमारी स्थिति है; हम सीजोफ्रेनिक, खंड-खंड, विरोधी खंडों में बंट जाने के लिए तैयार खड़े हैं। पुराना मन अपने सूत्रों के साथ काम कर रहा है, नए मन की पर्त ऊपर से बैठती जा रही है। पुराने मन में मनु हैं, याज्ञवल्क्य हैं; नए मन में माक्र्स और फ्रायड हैं। और सब एक साथ हैं। और भारत का मन एक अजीब तरह की खिचड़ी हो गया है, जिसमें सफाई नहीं है; जिसमें क्लैरिटी नहीं है; जिसमें स्पष्ट निर्णय नहीं है; और जिसके पास स्पष्ट रेखाओं वाला व्यक्तित्व नहीं है, जिसके भीतर सब है। जिसके पास बैलगाड़ी की दुनिया में पैदा किए गए विश्वास हैं और जेट की दुनिया में पैदा किए गए विचार हैं। हजारों सदियों का फासला एक ही साथ मौजूद है। हमारी सड़क जैसी हालत है हमारे मन की भी। उस पर बैलगाड़ी भी चल रही है, उस पर कार भी चल रही है, उससे भैंस भी गुजर रही है, उससे ऊंट भी निकल रहा है, उससे पैदल आदमी भी जा रहा है। ऊपर हवाई जहाज भी उड़ रहा है।

हजारों सदियां एक साथ सूरत की सड़क पर देखी जा सकती हैं। ऐसा ही हमारा मन भी है। उसमें भी हजारों सदियां हैं और हर सदी के दिए गए अलग-अलग विश्वास, विचार, वे सब इकट्ठे हो गए हैं। इस चित्त को समझ लेना जरूरी है, अन्यथा बदलना मुश्किल हो जाएगा।

इसलिए पहली बात आपसे यह कहना चाहता हूं कि अगर समाज में परिवर्तन चाहिए--और चाहे बिना कोई उपाय नहीं है--तो हमारे मन के विश्वास के आधार अलग कर देने होंगे; विचार करना शुरू करना पड़ेगा। विचार करना कष्टपूर्ण है, विश्वास करना सुविधापूर्ण है, कन्वीनिएंट है; क्योंकि विश्वास करने में हमें कुछ भी नहीं करना पड़ता, सिर्फ विश्वास करना पड़ता है। विचार करने में हमें बहुत कुछ करना पड़ता है। विचार करने में हमें ही निष्कर्ष तक पहुंचना पड़ता है। विचार में एक यात्रा है, विश्वास में विश्राम है।

तो भारत का मन विश्राम कर रहा है हजारों साल से; विश्वास की छाया में आंख बंद किए पड़ा है। मान लिया है, इसलिए खोजने की जरूरत नहीं रही है। इसीलिए भारत में साइंस पैदा नहीं हो सकी। हो सकती थी सबसे पहले। सारी पृथ्वी पर सबसे पहले यह जमीन सभ्य हुई, सबसे पहले पृथ्वी पर इस जमीन ने भाषा को जन्माया। सबसे पहले पृथ्वी पर इस जमीन को गणित का बोध आया।

जिनके पास सारे सूत्र आ गए थे सबसे पहले, वे आज सबसे पीछे खड़े हैं--एक मिरेकल है, एक चमत्कार है। गणित हमने खोजा। यह एक दो तीन चार से नौ तक की जो गिनती है, यह सारी दुनिया में हमसे फैली है। यह हमसे गई सारी दुनिया में। लेकिन आइंस्टीन हम पैदा नहीं करते, आइंस्टीन कोई और पैदा करता है। न्यूटन हम पैदा नहीं करते, वह कोई और पैदा करता है। सबसे पहले जिन्होंने गणित पैदा किया, गणित की ऊंचाइयां वे क्यों न छू सके? सबसे पहले जिन्होंने भाषा पैदा की, वे विचार की ऊंचाइयां क्यों न छू सके? आज से कोई पांच हजार साल पहले हमने सभ्यता को सबसे पहले जन्म दिया। लेकिन हमने नींव भर कर छोड़ दी, ऊपर का भवन नहीं बनाया। वह भवन किन्हीं और ने बना लिया है। आज हम उन्हीं के सामने भीख मांगते हुए खड़े हैं।

दुनिया की सारी भाषाएं करीब-करीब संस्कृत से जन्मी हैं। रूस की भाषा में कोई बीस प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं। लिथियानियन में कोई पचहत्तर प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं। ग्रीक या रोमन, या अंग्रेजी, या जर्मन, सारी भाषाएं संस्कृत से उधार हैं।

गणित हमसे फैला और सारे जगत में गया। लेकिन विचार हम न कर पाए और हम विश्वास से घिरते चले गए। विश्वास से जो हो गया उसे स्वीकार करके बैठ गया। फिर पांच हजार साल उसने कोई यात्रा न की। वह अपनी संस्कृत की किताब लिए दोहराता रहा। बार-बार दोहराता रहा। आवृत्ति और पाठ करता रहा। जो उसने पा लिया था उसका गुणगान करता रहा।

लेकिन ध्यान रहे, जो हमने पाया है, उसे भी बचाना हो तो रोज नए को पाते रहना होता है। जो हमने पा लिया है उसकी सुरक्षा के लिए भी रोज नए को पाने की जरूरत पड़ती है। एक आदमी धन कमाता है, अगर उसने दस हजार रुपए पा लिए हैं तो वह भली-भांति जानता है कि ये दस हजार भी न बचेंगे अगर ग्यारहवां हजार नहीं पैदा किया जाता है। ये दस हजार भी बचाने हैं तो ग्यारहवां हजार पैदा होता रहना चाहिए; नहीं तो ये दस हजार भी खो जाएंगे।

एक एक कदम

इस जगत में या तो आगे जाओ या पीछे जाना पड़ता है; खड़े होने के लिए कोई उपाय नहीं है। यहां ठहर कर खड़े नहीं हो सकते हैं। अगर अपनी ही जगह पर भी खड़ा रहना हो तो भी आगे के लिए दौड़ते रहने की जरूरत पड़ती है। और अगर किसी ने सोचा कि जहां खड़े हैं वहीं खड़े रहें तो आगे जाना बंद हो जाता है और पीछे जाना तत्काल शुरू हो जाता है; क्योंकि जगत में दो ही गतियां हैं--बढ़ो या गिरो; रुक नहीं सकते।

एडिंग्टन ने अपने संस्मरणों में एक बहुत अदभुत बात लिखी है। उसने लिखा है कि मैं सारी भाषा में खोजबीन करके एक शब्द को बिलकुल झूठ पाया और वह शब्द है रेस्ट, विश्राम। रेस्ट जैसी कोई स्थिति जगत में है ही नहीं, एक क्षण को भी कोई चीज ठहरी हुई नहीं है। या तो आगे जा रही है या पीछे जा रही है--जा रही है। बुद्ध तो कहते थे, है शब्द का प्रयोग ही गलत है। क्योंकि प्रत्येक चीज हो रही है, है की स्थिति में कोई चीज नहीं है।

हम कहते हैं, नदी है। गलत कहते हैं; नदी हो रही है।

हम कहते हैं, बूढा है। गलत कहते हैं; बूढा हो रहा है।

हम कहते हैं, जवान है। गलत कहते हैं; जवान हो रहा है।

हर चीज होने की हालत में है, है की हालत में कोई भी चीज नहीं है। कोई चीज कहीं ठहरी हुई नहीं है, सब चीजें हो रही हैं। लेकिन भारत विश्वास को पकड़ कर, होने की प्रक्रिया छोड़ कर, है की प्रक्रिया में विश्राम करने लगा। हां, विश्वास एक जरूर ऐसी चीज है जो है। एडिंग्टन अगर मुझे मिलता तो उससे मैं कहता कि तुम गलत कहते हो, एक चीज है जो रेस्ट में सदा रहती है, वह है बिलीफ। वह कभी होती नहीं, वह जहां है वहीं रहती है।

विश्वास जो है वह सदा ठहरा हुआ है। उसमें कोई गति नहीं, कोई कंपन नहीं, कोई आगे-पीछे कुछ भी नहीं है; वह जहां है वहीं है। इसलिए विश्वास जगत में सबसे मरी हुई चीज है। क्योंकि जिंदगी का लक्षण है, होना; मृत्यु का लक्षण है, न होने की स्थिति में हो जाना। विश्वास मरी हुई चीज है। लेकिन मरी हुई चीजें कन्वीनिएंट होती हैं, सुविधापूर्ण होती हैं। अगर आपके घर में दस आदमी जिंदा हैं तो बहुत तरह के उपद्रव होंगे, और अगर दस आदमी मरे हुए हैं तो कोई उपद्रव नहीं होगा। मरघट पर कोई उपद्रव होते हैं? कोई उपद्रव नहीं होता।

जिंदगी के साथ उपद्रव है, मृत्यु के साथ कोई उपद्रव नहीं है।

हमें शायद यह समझ में आ गया है कि विश्वास के साथ सुविधा से जी सकेंगे। नहीं, मैं आपसे कहता हूं, विश्वास के साथ सुविधा से मर सकेंगे। जीना हो तो जीना तो सुविधा के साथ नहीं हो सकता; जीना हो तो श्रम के साथ होगा; जीना हो तो परिवर्तन के साथ होगा; जीना हो तो संघर्ष के साथ होगा।

विचार के साथ विद्रोह है, विश्वास के साथ संतोष है। विचार के साथ गति है, विश्वास के साथ मृत्यु है। विश्वास के साथ अतीत है, विचार के साथ भविष्य है।

हमें भारत के मन से विश्वास की जड़ें उखाड़ कर फेंक देनी पड़ें तो हम विचार का बीज बो सकते हैं, अन्यथा नहीं संभव हो पाएगा। और अगर हमने विश्वास की जड़ें भीतर रहने दीं और ऊपर से विचार के बीज बो दिए, तो वह जो भारत का गहरा विश्वासी मन है, वह विचार पर भी विश्वास कर लेता है।

मेरे पास भी विश्वासी इकट्ठे हो जाते हैं। वे मुझ पर ही विश्वास कर लेते हैं। अब मेरे जैसा आदमी बिलकुल भरोसे का नहीं है। उस पर विश्वास करना ही नहीं चाहिए। लेकिन मेरे पास भी कोई आ जाता है, वह कहता है कि हम तो आपकी बात को बिलकुल मानते हैं। आप जो कहते हैं बिलकुल ठीक है। हमारी बड़ी श्रद्धा आपके प्रति हो गई है।

तो बड़ा खतरा है! मैं श्रद्धा उखाड़ने की कोशिश में लगा हूं, वे मुझ पर ही श्रद्धा करने लगते हैं! वह जो उसके भीतर विश्वास वाला चित्त है, वह कहता है कि ठीक है, चलो दूसरा विश्वास छोड़ते हैं, आपको ही पकड़ लेते हैं।

इसलिए इस देश में विचार करने वाले लोग पैदा न हुए हों, ऐसा नहीं है। लेकिन यह देश इतना गहरा विश्वास से भरा है कि विचार करने वाले लोगों को आत्मसात कर जाता है, उनको पी जाता है।

बुद्ध पैदा हुए। अब बुद्ध जैसा विचार करने वाला पृथ्वी पर मुश्किल से कभी कोई पैदा होता है। हम बुद्ध को भी पी गए। बुद्ध ने कहा, कोई भगवान नहीं है। हमने कहा कि तुम्हीं भगवान हो। बुद्ध ने कहा, कोई मूर्तियां मत बनाना, किसी की पूजा मत करना, कोई पूज्य नहीं है। हमने बुद्ध की इतनी मूर्तियां बनाईं जितनी दुनिया में किसी आदमी की नहीं हैं। बुद्ध के एक-एक मंदिर हैं ऐसे आज पृथ्वी पर जिनमें दस-दस हजार मूर्तियां हैं। बुद्ध की मूर्तियां इतनी बनीं, इतनी बनीं, कि दुनिया पहली दफे बुद्ध की मूर्तियों के द्वारा ही मूर्तियों से परिचित हुई। इसलिए जब हिंदुस्तान के बाहर मूर्तियां गईं तो सबसे पहले बुद्ध की मूर्तियां गईं। इसलिए अरब में और ईरान में और इराक में जब पहली दफे मूर्तियां गईं तो बुद्ध की गईं। उन्होंने पूछा, ये क्या है? तो लोगों ने कहा, ये बुद्ध हैं। इसलिए उनके पास मूर्ति का जो शब्द है, वह है बुत। बुत, बुद्ध का बिगड़ा हुआ रूप है। उन्होंने समझा कि यह बुत है। बुद्ध ही उनके लिए मूर्ति का पर्यायवाची बन गया। बुत, बुद्ध का बिगड़ा हुआ रूप है। बुतपरस्त का मतलब है, बुद्धपरस्त। और बुद्ध ने कहा था, मेरी मूर्तियां मत बनाना!

यह मुल्क बहुत अदभुत है। इसके अचेतन मन में विश्वास इतना गहरा है कि इसने कहा कि इतना अच्छा आदमी पैदा हुआ बुद्ध, जिसने हमें सिखाया मूर्तियां न बनाना, तो कम से कम इसकी मूर्तियां तो बना ही दें! इसकी तो पूजा करें ही!

बुद्ध ने कहा, किसी की शरण में मत जाना, क्योंकि जो किसी की भी शरण में जाता है वह आत्मघाती है। हमने कहा, बुद्धं शरणं गच्छामि! हम बुद्ध की ही शरण में जाते हैं; क्योंकि तुमने हमें ज्ञान दिया; तुमने हमें जगाया; अब हम तुम्हारी शरण में आते हैं।

इसे तोड़ना पड़े। इसलिए हम पच्चीस सदियों में...ऐसा नहीं कि हमने विचारक पैदा नहीं किए, हमने विचारक पैदा किए, लेकिन विश्वास के सागर में विचार की बूंदें खो गईं--गिरीं और खो गईं, गिरीं और खो गईं--और हम उनको आत्मसात करते चले गए।

दूसरे मुल्कों ने विचार को आत्मसात नहीं किया, दूसरे मुल्क विचार से लड़े और लड़ने में उनको बदलना पड़ा। यूनान ने सुकरात को सूली पर चढ़ा दिया, हमने बुद्ध की पूजा कर ली। अब यह मैं आपसे कहूंगा कि यूनान को बुद्ध अगर मिलते तो वे उनको भी सूली पर चढ़ा देते; क्योंकि वे कहते कि गलत है यह बात, हम विश्वासी हैं, तो हम विचार की बात न मानेंगे। लेकिन यह विचार की यात्रा शुरू हो गई। अगर हमने बुद्ध से कहा होता कि हम श्रद्धालु लोग हैं, हम तुम्हारी बात न मानेंगे, तो भी अच्छा होता; क्योंकि न मानने के लिए भी विचार करना पड़ता है। हमने कहा, हम विश्वासी लोग हैं, आप जो कहते हो विश्वास के खिलाफ, हम इसको भी मान लेंगे, हम आपकी भी पूजा करेंगे।

हमने एक तीर्थंकर को गोली न मारी, हमने एक बुद्ध को सूली पर न चढ़ाया, क्योंकि हम उनको आत्मसात कर गए।

यूनान ने सुकरात को जहर पिला दिया। जेरुसलम ने जीसस को सूली पर लटका दिया। लड़े वे बुरी तरह। उन्होंने कहा, हम विश्वासी हैं, हम तुम्हारी बात कैसे मानेंगे! लेकिन इस लड़ने में उनको विचार में पड़ जाना पड़ा और यूनान में पहली दफा विज्ञान का जन्म हो गया। सुकरात को यूनान अभी तक नहीं पचा पाया, लेकिन हम पचा गए सबको। यह हमारा दुर्भाग्य सिद्ध हुआ। बुद्ध जैसे आदमी को भी हमने अवतार बना दिया कि तुम भी भगवान हो, तुम्हारी भी पूजा करेंगे, बैठो मंदिर में, हमें परेशान मत करो, हम जैसे हैं हम वैसे ही रहेंगे।

यह हमारी जो प्रतिभा है विचार को पचा जाने की, इस प्रतिभा के प्रति जागना पड़ेगा। यह बहुत महंगी पड़ गई है; इसे हटाना पड़ेगा, इसे मिटाना पड़ेगा, इसे जड़-मूल से उखाड़ना पड़ेगा। लेकिन जो न्यस्त स्वार्थ हैं, वेस्टेड इंट्रेस्ट हैं, उनके पक्ष में है यह बात। उनको यह बहुत रुचिकर है, यह बहुत हितकर है। नेता नहीं चाहता कि अनुयायी कभी भी सोचे, क्योंकि अगर अनुयायी सोचेगा तो नेता कहां होगा फिर! जिस दिन अनुयायी खुद सोचेगा उस दिन नेता की कोई जगह नहीं रह जाती। असल में अनुयायी नहीं सोचता इसलिए नेता को सोचने का मौका मिलता है, नेतृत्व मिलता है। जिस दिन अनुयायी सोचेगा, उस दिन नेता से कहेगा, आप जाइए; जो काम आप हमारे लिए करते थे वह हमने खुद ही करना शुरू कर दिया है। अगर

धार्मिक सोचेगा तो धर्मगुरु का क्या होगा? इसलिए दुनिया में जो न्यस्त स्वार्थ हैं, वे न्यस्त स्वार्थ विश्वास का शोषण कर रहे हैं।

मैं एक कहानी निरंतर कहता रहा हूं। बहुत प्रीतिकर है मुझे। वह आपसे भी कहूं। सुना है मैंने कि किसी गांव में एक छोटी-सी तेली की दुकान पर एक सुबह एक विचारक गया है। जब वह तेल ले रहा है तब उसने देखा कि पीछे तेली का कोल्हू चल रहा है और बैल जो है बिना किसी के हांके कोल्हू को चला रहा है। उस विचारक को बड़ी हैरानी हुई।

हम गए होते, हमें कोई हैरानी न होती। हम देखते ही न। हमें पता भी न चलता कि यह क्या हो रहा है! हम सवाल भी न उठाते। क्योंकि सवाल विश्वासी आदमी कभी भी नहीं उठाता। विश्वासी आदमी के पास जवाब रेडीमेड रहते हैं, सवाल बिलकुल नहीं रहते।

उस विचारक ने कहा कि आश्चर्य, यह बैल तुम कहां से ले आए? यह बैल हिंदुस्तानी मालूम नहीं पड़ता। हिंदुस्तान में तो चपरासी से लेकर राष्ट्रपति तक को जब तक कोई पीछे से हांके न, कोई चलता ही नहीं। यह बैल तुम्हें कहां मिल गया? यह बैल तुमने कहां से खोज लिया? इसे कोई चला नहीं रहा है और बैल कोल्हू चला रहा है!

उस तेली ने कहा कि नहीं, आपको पता नहीं है। चला रहे हैं हमीं इसे भी, लेकिन तरकीबें जरा सूक्ष्म और परोक्ष हैं, इनडायरेक्ट हैं। उस विचारक ने कहा कि मुझे जरा ज्ञान दो। क्या तरकीब है? उस कोल्हू के चलाने वाले मालिक ने, उस तेली ने कहा, जरा ठीक से देखो, बैल की आंखों पर पट्टियां बंधी हैं। बैल को दिखाई नहीं पड़ता कि कोई पीछे चला रहा है कि नहीं चला रहा है। आंख पर पट्टियां बांध दी हैं।

जब भी किसी से कोल्हू चलवाना हो, तब पहला नियम है--उसकी आंख पर पट्टी बांध दो। विश्वास आंख पर पट्टी बांधना है। आंख मत खोलो! जो आंख खोलेगा वह नर्क जाएगा। जो आंख बंद रखेगा उसके लिए स्वर्ग और बहिश्त में सब इंतजाम है। आंख पर पट्टी बांध दो। डरा दो कि आंख खोली तो भटक जाओगे। आंख बंद रखो! इसलिए ग्रंथ कहते हैं कि संदेह किया तो भटक जाओगे। विश्वास रखो!

विचारक ने कहा, यह मैं समझ गया। लेकिन बैल कभी रुक कर भी तो पता लगा सकता है कि पीछे कोई हांकने वाला है या नहीं?

उस तेली ने कहा कि अगर बैल इतना ही समझदार होता तो पहली तो बात है आंख पर पट्टी न बांधने देता। और दूसरी बात है, अगर बैल इतना ही समझदार होता तो बैल तेल बेचता, हम कोल्हू चलाते! हमने काफी सोच-विचार किया है तभी बैल कोल्हू चला रहा है और हम दुकान चला रहे हैं। हमने बैल के गले में घंटी बांध रखी है; जब तक बैल चलता रहता है, घंटी बजती रहती है, और मैं जानता हूं कि बैल चल रहा है। जैसे ही घंटी रुकी कि हमने छलांग लगाई और बैल को हांका। बैल को पता नहीं चल पाता कि पीछे आदमी नहीं था! घंटी बंधी है!

विचारक ने कहा, ठीक है, घंटी मुझे भी सुनाई पड़ रही है। एक आखिरी सवाल और। तेरा बैल कभी खड़े होकर सिर हिला कर घंटी नहीं बजाता रहता?

उस तेली ने कहा, महाराज! जरा धीरे बोलो, कहीं बैल न सुन ले! और आप दुबारा से कहीं और से तेल ले लेना। यह महंगा सौदा है। ऐसे आदमियों का आना-जाना ठीक नहीं। हमारी दुकान बड़े मजे से चल रही है। कहां की फिजूल की बातें उठाते हो? आदमी कैसे हो! कैसे बेकार के सवाल पूछते हो?

कुछ हैं, जिनका स्वार्थ है कि आदमी अंधा रहे। कुछ हैं, जिनका स्वार्थ है कि आदमी की आंख न खुल जाए। और मजा यह है कि जिन पर हम भरोसा करते हैं, वे ही कुछ नेता, गुरु, मंदिर, मस्जिद--वे ही--वे ही जिनके हम पैर पकड़े हैं, उनका ही न्यस्त स्वार्थ है कि आदमी में विचार पैदा न हो। इसलिए वे विचार की हत्या करते चले जाते हैं। वे जितनी हत्या करते हैं, उतने जोर से हम पैर पकड़ते हैं; हम जितने जोर से पैर पकड़ते हैं, उतने जोर से हत्या हो जाती है। यह चलता रहा है। इसे तोड़ने की तैयारी भारत को दिखानी पड़ेगी। जिस चौराहे पर हम खड़े हैं, अगर वहां से हम विश्वास लेकर ही आगे बढ़े तो हमारा कोई भविष्य नहीं है। इस चौराहे से हमें विचार लेकर आगे बढ़ना होगा।

एक एक कदम

निश्चित ही विचार और विश्वास की प्रक्रियाएं बुनियादी रूप से अलग हैं। इसलिए प्रक्रियाओं के भेद को समझ लेना चाहिए।

आइंस्टीन से किसी ने मरने के कुछ दिन पहले पूछा कि आप एक विचारक में और एक विश्वासी में क्या फर्क करते हैं? तो आइंस्टीन ने कहा, मैं थोड़ा-सा ही फर्क करता हूं। अगर विचारक से सौ सवाल पूछो तो निन्यानबे सवालों के संबंध में कहेगा, मुझे मालूम नहीं है। और जिस एक सवाल के संबंध में उसे मालूम होगा, तो वह कहेगा कि मुझे मालूम है, लेकिन जितना मुझे मालूम है उतना कह रहा हूं। यह उत्तर अंतिम नहीं है, अल्टीमेट नहीं है। कल और भी मालूम हो सकता है और तब उत्तर बदल सकता है।

विचार करने वाले के पास बंधे हुए अंतिम उत्तर नहीं हो सकते। विचार करने वाले के पास सभी प्रश्नों के उत्तर नहीं हो सकते। जिंदगी बहुत जटिल है और जिंदगी बहुत गहरा रहस्य है। और जिंदगी में बहुत कुछ अज्ञात और अनंत है। विचार करने वाले को दिखाई पड़ता है कि अज्ञान बहुत बड़ा है, ज्ञान बहुत छोटा है। जैसे अमावस की अंधेरी रात में एक हाथ में मिट्टी का छोटा-सा दीया है। चारों तरफ घनघोर अंधेरा है और छोटा-सा मिट्टी का दीया है, और वह ज्योति भी प्रतिपल बुझी-बुझी होती है। हवा के झोंके आते हैं और ज्योति बुझने को होती है और अंधेरा बढ़ने को होता है। प्रतिपल अंधेरा चारों तरफ से ज्योति को घेरे हुए है। मजा यह है कि उस ज्योति में सिवाय अंधेरे के और कुछ भी दिखाई भी नहीं पड़ता है।

विचार के पास अंतिम उत्तर नहीं हो सकते; विचार के पास ज्यादा से ज्यादा कामचलाऊ उत्तर हो सकते हैं। और विचार के पास सभी उत्तर नहीं हो सकते। विश्वास के पास सभी उत्तर हैं और कामचलाऊ नहीं हैं--अल्टीमेट हैं, आखिरी हैं। विश्वास के लिए सब मालूम है, कुछ अज्ञात नहीं है, कोई रहस्य नहीं है। उसे परमात्मा का घर-ठिकाना भी पता है, स्वर्ग और नर्क की गहराई और लंबाई और चौड़ाई भी पता है। उसे सब पता है!

विश्वासी परम ज्ञानी है और विचारक परम अज्ञानी है। इसलिए हमारे अहंकार को विश्वास में तो मजा आता है, विचार में तकलीफ होती है; क्योंकि विश्वास करके हम भी परम ज्ञानी हो जाते हैं; विश्वास करके हमारे पास भी सभी उत्तर आ जाते हैं, हर चीज का उत्तर है। और विचार करके हमारे जो बंधे-बंधाए उत्तर थे वे भी खिसक जाते हैं और धीरे-धीरे हाथ खाली हो जाता है।

लेकिन ध्यान रहे, झूठे परम उत्तर, झूठे अंतिम उत्तर, सच्चे कामचलाऊ उत्तरों से भी बेकार हैं। उनका कोई मूल्य नहीं है। इसलिए हिंदुस्तान को सब पता है और फिर भी कुछ पता नहीं है। परमात्मा का पता है, ब्रह्म का पता है, माया का पता है, गेहूं पैदा करना पता नहीं है। स्वर्ग-नर्क सब पता हैं, साइकिल का पंक्चर जोड़ना पता नहीं है। छोटी-छोटी चीजें पता नहीं हैं और बड़ी-बड़ी सब चीजें पता हैं? शक होता है! क्योंकि बड़ी चीजें तभी पता हो सकती हैं जब छोटी चीजों की सीढ़ियों से चढ़ा गया हो।

लेकिन बड़ी चीजों के पता होने का सिर्फ एक ही कारण है कि उनकी जांच का कोई उपाय नहीं है, उनकी प्रयोगशाला में कोई परीक्षा नहीं हो सकती कि तुम्हारा ब्रह्म कहां है? कि तुम्हारा स्वर्ग कहां है? उसकी चूंकि कोई जांच नहीं हो सकती इसलिए मजे से पता है। और फिर जिसको जो पता है...।

मुसलमान अपना पता रखे है, हिंदू अपना, जैन अपना। महावीर के अनुयायी उस समय में कहते थे, तीन नर्क हैं। बुद्ध के अनुयायी कहते थे, सात नर्क हैं। और बुद्ध के अनुयायी महावीर के अनुयायियों से कहते थे कि तुम्हारा तीर्थंकर जरा ज्यादा गहरे नहीं जा पाया है, अभी तीन का ही पता लगा पाया है! मक्खली गोशाल के अनुयायी कहते थे, तुम दोनों के तीर्थंकर ज्यादा गहरे नहीं गए, सात सौ नर्क हैं। हमारा गुरु सात सौ नर्कों तक का पता लगा कर आया है।

अब यह मजा ऐसा है कि इसकी कोई जांचतौल नहीं हो सकती कि तीन हैं, कि सात हैं, कि सात सौ हैं, कि सात हजार हैं। यह बच्चों का खेल हो गया। कहानियां गढ़ना हो गया। ये कहानियां गढ़ी जा सकती हैं और हजारों साल तक चल सकती हैं। लेकिन इनसे जिंदगी का कोई हित नहीं होता।

ज्ञान भी सीढ़ियों से यात्रा करता है, और ज्ञान भी पहले जो क्षुद्रतम है उसे जानता है तब विराटतम को जान पाता है। विचार की प्रक्रिया जो निकट है उसे जानने से शुरू होती है, विश्वास की प्रक्रिया जो दूर है उसे मानने से शुरू होती है। विचार की प्रक्रिया जो हाथ के पास है, उसे पहचानने से शुरू होती है; विश्वास की प्रक्रिया जो

अंतहीन, किसी दूर असीम कोने पर खड़ा है, उसे मानने से शुरू होती है। उसकी जांच का कोई उपाय नहीं होता।

इसलिए विश्वासी कौम एक्सपेरिमेंटल नहीं हो पाती, प्रयोगात्मक नहीं हो पाती; क्योंकि प्रयोग तो हाथ के पास किया जा सकता है; दूर का प्रयोग नहीं किया जा सकता। विचार करने वाली कौम प्रयोगात्मक हो पाती है। प्रयोग से विज्ञान का जन्म होता है। विज्ञान को हम जन्म नहीं दे पाए। और बिना विज्ञान के इस देश का कोई भविष्य नहीं है।

लेकिन एक बात ठीक से समझ लें, जो बुनियादी सवाल उठेगा। साइंटिफिक माइंड, वैज्ञानिक मन और विज्ञान के द्वारा शिक्षित हुआ मन, इन दोनों में बहुत फर्क है। वैज्ञानिक मन अलग बात है और विज्ञान की शिक्षा लिया हुआ मन, बिलकुल अलग बात है। वह सिर्फ टेक्नीशियन है। एक आदमी एम.एससी. हो जाए और पीएच.डी. हो जाए, एक आदमी विज्ञान की आखिरी उपाधि पा ले, तो भी वैज्ञानिक नहीं हो जाता। सिर्फ उसके पास इनफर्मेशन होती है, संग्रह होता है। लेकिन चित्त का वैज्ञानिक होना बहुत दूसरी बात है।

यह हो सकता है कि यह आदमी फिर भी विश्वासी हो और विश्वास ही करता चला जाए; यह विज्ञान की किताबों पर भी विश्वास कर ले। इसे जो पढ़ाया जाए वह मान ले कि आर्किमिडीज ठीक है, न्यूटन ठीक है, आइंस्टीन ठीक है। कल कहता था, कृष्ण ठीक हैं, महावीर ठीक हैं, बुद्ध ठीक हैं। जिस तरह श्रद्धापूर्वक उन्हें स्वीकार करता था उसी तरह श्रद्धापूर्वक आइंस्टीन को स्वीकार कर ले तो यह विज्ञान का स्नातक हो जाएगा, लेकिन वैज्ञानिक न हो पाएगा।

इसलिए हम हिंदुस्तान में एक बड़ी भूल में पड़ रहे हैं। हिंदुस्तान को साइंटिफिक माइंड की जरूरत है और हम सोच रहे हैं कि हम यूनिवर्सिटीज से साइंस के ग्रेजुएट निकाल कर काम पूरा कर लेंगे। वह पूरा नहीं होने वाला है। क्योंकि वह जो साइंस का ग्रेजुएट है वह भी यूनिवर्सिटी से निकल कर घोड़े पर बैठ कर दूल्हा बन जाता है। वह भी बैंड-बाजा बजवाता हुआ शादी करने चला जाता है। वह भी जन्मकुंडली दिखा कर तिथि निकलवा लेता है। वह भी हाथ की रेखा दिखलवा कर पूछता है कि परीक्षा में पास होऊंगा कि नहीं? धन मिलेगा कि नहीं? तो यह जो आदमी है, यह स्नातक हो जाएगा, यह विज्ञान की परीक्षा पास कर लेगा, लेकिन वैज्ञानिक? वैज्ञानिक होना बहुत दूसरी बात है। और विज्ञान के स्नातकों से देश नहीं बदलेगा, वैज्ञानिक चित्त से देश बदलेगा। वैज्ञानिक चित्त का मतलब है, तर्क करने वाला चित्त, प्रश्न पूछने वाला चित्त--जल्दी से उत्तर मान लेने वाला चित्त नहीं--जब तक पूछ सके पूछने वाला चित्त, पूछता ही जाने वाला चित्त।

लेकिन हमने हजारों साल से ऐसे चित्त की गर्दन काट दी है।

सुना है मैंने कि जनक ने एक बहुत बड़ा आयोजन किया था; उस जमाने के सारे ज्ञानियों को इकट्ठा किया था। उस दिन इस मुल्क के भाग्य का फैसला हो गया था। इस चौरस्ते पर उस फैसले को फिर से बदलने की जरूरत आ गई है। जनक के जमाने के जितने ज्ञानी थे, उसने इकट्ठे किए थे। उसने एक हजार गाएं अपने द्वार पर खड़ी कर रखी थीं। उन गायों की सींगों पर सोना चढ़ा दिया था, हीरे जड़ दिए थे, और कहा था कि जो सबसे ज्यादा ज्ञानी होगा वह इन गायों को ले जाएगा। बड़े-बड़े ज्ञानी आए, बड़े-बड़े पंडित आए, विचारक आए, सभा में बड़ा विवाद हुआ। पीछे याज्ञवल्क्य को खबर मिली, वह भी आया। वह अपने शिष्यों को लेकर आया था। वह दरवाजे के भीतर घुसा और उसने शिष्यों से कहा कि जाओ, गायों को तो पहले घर ले जाओ, निपटारा हम पीछे कर लेंगे। गाएं धूप में खड़ी बहुत थक गई होंगी।

सारी सभा घबड़ा गई। जनक भी कुछ बोल न सका। लेकिन कोई भी यह न समझा कि इस तरह दंभ की भाषा बोलने वाला आदमी ज्ञानी नहीं हो सकता। याज्ञवल्क्य भीतर गया अकड़ता हुआ, उसने सबको हरा दिया। तब एक स्त्री गार्गी खड़ी हुई। और गार्गी ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न पूछने शुरू किए। याज्ञवल्क्य उसके प्रश्नों से घबड़ाने लगा; क्योंकि दंभ जो है वह सदा अज्ञान के ऊपर खड़ा होता है; प्रश्नों से बहुत घबड़ाता है। श्रद्धा मांगता है। गार्गी पूछती ही चली गई। याज्ञवल्क्य ने आखिर में कहा कि जो भी है सब ब्रह्म है। गार्गी ने पूछा कि मैं यह जानना चाहती हूं, ब्रह्म किस पर आधारित है? याज्ञवल्क्य ने कहा, गार्गी अब जबान बंद कर, अन्यथा तेरा सिर नीचे गिरा दिया जाएगा! और उस सभा के सारे लोग चुपचाप बैठे सुनते रहे। और जनक भी चुपचाप

सुनता रहा। उस स्त्री ने ठीक सवाल पूछा। उस स्त्री के पास एक वैज्ञानिक बुद्धि थी। लेकिन याज्ञवल्क्य के पास एक विश्वासी बुद्धि थी और उसने कहा कि तेरा सिर गिर जाएगा नीचे अगर और सवाल पूछेगी। यह अति प्रश्न हो गया। यह सीमा के बाहर जाना है, ब्रह्म का आधार मत पूछ।

बस जब हम कहते हैं, अति प्रश्न हो गया, तभी वैज्ञानिक चित्त मर जाता है। असल में वैज्ञानिक चित्त के लिए अति प्रश्न है ही नहीं। ऐसा कोई प्रश्न नहीं है जो न पूछा जा सके। और अगर ऐसा कोई प्रश्न है जो नहीं पूछा जा सकता तो उसे तो सबसे पहले पूछा जाना चाहिए, क्योंकि वह जरूर गहरे में जिंदगी का प्रश्न होगा जो नहीं पूछा जा सकता।

गार्गी चुप हो गई। वह सभा चुप हो गई। याज्ञवल्क्य गायों को घेर कर चला गया। उस दिन से पांच हजार साल हो गए, हमने अति प्रश्न नहीं पूछे। और जब अति प्रश्न नहीं पूछे तो हिम्मत टूटती चली गई। फिर हमने प्रश्न ही पूछने बंद कर दिए। फिर हम जवाबों पर ठहर गए। अब हमारे पास जवाब सब हैं, प्रश्न बिलकुल नहीं हैं। हर चीज का उत्तर है, सवाल बिलकुल नहीं हैं। और गांव-गांव गुरु बैठे हैं। नगर-नगर गुरु घूम रहे हैं। साधू हैं, संन्यासी हैं, मुनि हैं, वे लोगों को समझा रहे हैं--श्रद्धा रखो, श्रद्धा रखो, श्रद्धा रखो! वे लोगों को सुला रहे हैं। अच्छा था कि जहर पिला देते। श्रद्धा से कम खतरनाक सिद्ध होता। आदमी मर जाता तो ठीक था। आदमी जिंदा भी है और आत्मा मर गई है। वह प्रश्न पूछने से जो तेजस्विता आती है, संघर्ष करने से विचार के जो बल आता है, आग में गुजरने से प्रश्न की जो निखार आता है, वह सब खो गया, सब मंदा हो गया।

इस चौरस्ते पर मैं दोहरा कर--याज्ञवल्क्य कहीं सुनते हों तो उनसे कहना चाहता हूं कि गार्गी अब अति प्रश्न पूछेगी। और याज्ञवल्क्य गाएं वापस लौटा जाओ। अब यह चलेगा नहीं। अति प्रश्न पूछे जाएंगे। अति प्रश्न के पूछने से विज्ञान जन्मता है। लेकिन हम कोई प्रश्न नहीं पूछते! विचार प्रश्न पूछता है, विश्वास उत्तर स्वीकार करता है।

ध्यान रहे, प्रश्न पूछ कर भी उत्तर मिलते हैं, लेकिन वे अपने होते हैं। बिना प्रश्न पूछे भी उत्तर मिलते हैं, वे सदा दूसरे के होते हैं। दूसरे का उत्तर कभी किसी देश की प्रतिभा को आगे नहीं बढ़ा पाता। अपना उत्तर चाहिए। और अपना उत्तर उसी के पास होता है जिसके पास अपना प्रश्न हो। जिसके पास अपना प्रश्न ही नहीं उसके पास अपना उत्तर कैसे हो सकता है? उसके पास बारोड, बासे, उधार उत्तरों का संग्रह होता है, जिनके नीचे छाती दब जाती है और आदमी डूब जाता है।

हिंदुस्तान अपने रेडीमेड, बासे उत्तरों में दब कर मर गया, डूब गया है। हमारी प्रतिभा का निखार नहीं है। धार नहीं है हमारी प्रतिभा पर। यह धार पैदा करनी पड़े। इसलिए पहला सूत्र आपसे कहता हूं: विश्वास नहीं, विचार; श्रद्धा नहीं, संदेह; बिलीफ नहीं, डाउट।

संदेह जितने जोर से हमें पकड़ ले, जीवन के सारे प्रश्नों को संदेह पकड़ ले, उतने जोर से हम विचार में लग जाएंगे। मजा यह है कि संदेह पकड़ता है तो विचार करना ही पड़ता है। बचने का उपाय नहीं; कोई एस्केप नहीं, भागने की सुविधा नहीं। अगर संदेह पकड़ेगा तो विचार करना ही पड़ेगा और अगर संदेह नहीं पकड़ेगा तो विचार की कोई जरूरत ही नहीं रह जाती। अनावश्यक हैं विचार, व्यर्थ का श्रम हैं।

हम एक-एक बच्चे को श्रद्धा सिखा रहे हैं। बाप अपने बेटे से कह रहा है कि विश्वास रखो, क्योंकि मैं जो कहता हूं वह ठीक ही होगा; क्योंकि मैं उम्र में बड़ा हूं। मैं बाप हूं, मैं अनुभवी हूं। होंगे अनुभवी, जरूर हैं बाप, उम्र में बड़े हैं, लेकिन जिंदगी जो सबसे बड़ा पाठ सिखा सकती थी, उससे चूक गए। वह यह था कि किसी पर श्रद्धा मत थोपना, अन्यथा उसके विचार का जन्म नहीं हो पाएगा। उस पर श्रद्धा थोप रहा है। बाप थोप रहा है, मां थोप रही है। उन्हें सुविधा है, क्योंकि बच्चों के सवाल तकलीफ में डालते हैं। अति प्रश्न हो जाते हैं। अगर उत्तर दो तो वे और गहरी बातें पूछेंगे। इसलिए बाप पहले ही सचेत हो जाता है कि ऐसी बातें न पूछ ले जिनके उत्तर मुझे पता नहीं हैं। इसलिए वह पहले ही डंडा उठा लेता है कि बस अब आगे मत पूछना। यहीं बात खत्म करो। हम सब जानते हैं और तुम भी जान लोगे जब उम्र आएगी, अनुभव आएगा। बच्चे प्रश्न पूछते आते हैं, बूढ़े उत्तर लिए हुए मर जाते हैं। सब बच्चे फिर से प्रश्न उठाना चाहते हैं, वे ही जो दुनिया में पहली दफे बच्चों ने उठाए होंगे, लेकिन हम उनकी गर्दन दबा देते हैं।

और हमारी शिक्षा उन्हें संदेह नहीं सिखाती, हमारी शिक्षा सिर्फ उन्हें उत्तर सिखाती है। गुरु भी डंडा लिए उनको उत्तर ठोक-ठोककर सिखाता रहता है। पूरी हमारी शिक्षा की व्यवस्था उत्तर सिखाने की व्यवस्था है। हम कंप्यूटर की तरह आदमी को फीड कर देते हैं। हर चीज का उत्तर बता देते हैं। टिम्बकटू कहां है? बता देते हैं, यह रहा। अफ्रीका कहां है? यह रहा। पानी कैसे बनता है? ऐसे बनता है। सब उत्तर दे देते हैं। और बीस-पच्चीस वर्ष की इस अत्यंत अमानवीय शिक्षा के भीतर से गुजर कर--जिसमें मां-बाप, भाई, परिवार, शिक्षक सब सम्मिलित हैं--बच्चे की प्रतिभा प्रश्न पूछना बंद कर देती है। फिर वह प्रश्न पूछती ही नहीं, फिर वह उत्तर बांध कर बैठ जाती है। और वह आदमी मर गया।

सच बात यह है कि हम मर बहुत पहले जाते हैं, दफनाए बहुत बाद में जाते हैं। बड़ा फासला होता है मरने और दफनाने में। बहुत कम सौभाग्यशाली लोग हैं जो उसी दिन मरते हैं जिस दिन दफनाए जाते हैं। कोई तीस साल में मर जाता है, कोई पच्चीस साल में। दफनाया जाता है, कोई सत्तर साल में दफनाया जाता है, कोई अस्सी साल में।

अभी अमरीका के हिप्पियों ने एक छोटा-सा नारा दिया है, वह नारा मुझे बहुत प्रीतिकर लगा। वह नारा बहुत अजीब है। उन्होंने नारा दिया है कि तीस साल के ऊपर के आदमी का भरोसा मत करना, क्योंकि तीस साल के ऊपर के आदमी के जिंदा होने का ही सबूत नहीं है; वह आमतौर से मर गया होता है।

इसमें सचाई है। यह बात एकदम झूठ नहीं मालूम पड़ती है, इसमें सचाई है। मार ही डालते हैं हम। यह हमें प्रक्रिया बदलनी पड़े। एक-एक घर में प्रश्न को जगाना पड़े। सब सहयोगी हो सकते हैं प्रश्नों को जगाने में। और अगर बच्चों के प्रश्न जगाए जाएं और उनको संदेह दिया जाए और शिक्षा के द्वार पर वे बड़े प्रश्न पूछते हुए पहुंचें और शिक्षा के मंदिर से लौटते वक्त और बड़े प्रश्न लेकर लौटें, तो मुल्क का सारा मन जो सो गया है वह जग सकता है। वह आज जग सकता है, कोई कारण नहीं है।

लेकिन उसमें बड़ी तकलीफें हैं। क्या होगा उनका जो विश्वास पर ही जी रहे हैं? और विश्वास पर बहुत कुछ जी रहा है। क्या होगा उनका जो विश्वास पर ही टिके हैं? और विश्वास पर बहुत कुछ टिका है। क्या होगा उनका जिनका विश्वास ही सारा शोषण है?

उन सबको बड़ी बेचैनी छा जाती है। उन सबको बड़ी कठिनाई हो जाती है। इसलिए वे संदेह उठाने वाले लोगों से भयभीत हैं, वे घबड़ाए हुए हैं। वे चाहते हैं कि संदेह मत उठाओ, क्योंकि संदेह बगावत ले आ सकता है। इसलिए वे चाहते हैं, लोगों को संतोष सिखाओ ताकि संतोष बगावत को मार दे।

अभी रासायनिक बड़ी खोजें हुई हैं। एल.एस.डी. है, मैस्कलिन है, और तरह के ड्रग्स खोजे गए हैं, और कुछ ऐसी केमिकल व्यवस्था भी कल्पना में आ गई है जिससे मनुष्य के भीतर से असंतोष को दूर किया जा सकता है। बहुत दूर नहीं है वह दिन कि हम गांव के पानी की झील में ऐसे केमिकल्स डाल दें कि सारे गांव के लोग अपने-अपने नल से पानी पीते रहें, उन्हें पता भी न चले और उनके भीतर से असंतोष समाप्त हो जाए।

जब मैं अभी रासायनिक क्रांति पर एक किताब पढ़ रहा था और जब मुझे यह पता चला कि इस तरह के द्रव्य खोज लिए गए हैं जो आदमी के भीतर से अशांति को, असंतोष को, विद्रोह को छीन सकते हैं, तो मेरा मन हुआ कि उस लेखक को एक पत्र लिखूं कि तुमने अब खोजे ये, यह बड़ी पुरानी खोज है, भारत ने पांच हजार साल पहले खोज ली है।

लेकिन हमने आध्यात्मिक तरकीबें खोजी थीं, भौतिक तरकीबें नहीं। हम किसी आदमी को कोई इंजेक्शन देकर संतोष नहीं लाना चाहते, हमने संतोष की और भी अच्छी व्यवस्था खोजी थी। हम संतोष ही पिलाते थे बचपन से। हमने इस देश को संतुष्ट ही रखा। हमने उस बिंदु तक न जाने दिया जहां असंतोष शुरू होता है। क्योंकि जहां असंतोष शुरू होता है तो फिर बायलिंग प्वाइंट बहुत दूर नहीं रहता। फिर उबलने का बिंदु भी पास आएगा और क्रांति होगी। असंतोष है आग--अगर बढ़ती चली जाए तो एक बिंदु पर एवोपरेशन, पानी भाप बनेगा, छलांग लगेगी, क्रांति हो जाएगी।

इसलिए हम संतोष सिखाते रहे हैं। हम कहते हैं, संतोष सबसे बड़ा धर्म है। संतोष से बड़ा अधर्म नहीं हो सकता। क्योंकि धर्म का मतलब अगर गति है, अगर धर्म का मतलब विकास है, अगर धर्म का मतलब प्रगति है, अगर धर्म का मतलब रोज आगे जाना है, तो संतोष धर्म नहीं हो सकता, असंतोष धर्म होगा।

हम सिखाते हैं कि संतोष जिसे मिल गया उसे सब मिल गया। नहीं, बात उलटी है। संतोष जिसे मिल गया उसे सब नहीं मिल जाता। हां, सब जिसे मिल जाए उसे संतोष जरूर मिल सकता है। लेकिन हम संतोष को पहले पिला देते हैं और तब सब यात्रा बंद हो जाती है। डबरा बन जाता है।

एक नदी अगर संतुष्ट हो जाए तो तालाब बन जाएगी, सागर नहीं बन सकती। कैसे बनेगी सागर? नदी संतुष्ट हो जाए तो जाए कहां? पहाड़ों को तोड़े क्यों? लड़े क्यों पत्थरों से? मार्ग क्यों बनाए? अनजान, अपरिचित खाइयों-खड्डों में भटके क्यों? सागर का क्या भरोसा है? सागर होगा ही, इसका क्या पता है? सागर है बहुत दूर। गंगा है गंगोत्री में, सागर है बहुत दूर। इतना लंबा फासला; कोई मार्ग बना नहीं; पक्के सीमेंट रोड नहीं; पत्थर तोड़ने हैं; रास्ता बनाना है अनजान अपरिचित को; जिसका ठिकाना नहीं कहां है, वहां जाना है; कौन जाए?

संतोष कर ले गंगा तो गंगोत्री ही रह जाए, फिर गंगा न बन पाए। मालूम है, गंगोत्री पर गंगा बहुत बड़ी नहीं है। हो भी नहीं सकती। वह तो सागर से मिलते समय बड़ी होती है।

अमेजान नदी दुनिया की सबसे बड़ी नदी है। अमेजान नदी में दुनिया का सबसे ज्यादा पानी है। लेकिन अमेजान नदी जहां से निकलती है वह जगह सब भारतीयों को घुमाने जैसी है। और कहीं उन्हें ले जाने की जरूरत नहीं है। सब भारतीयों को अमेजान नदी के उदगम स्रोत पर जरूर ले जाकर खड़ा कर देने जैसा है। वहां, जहां से अमेजान निकलती है, वहां से सिर्फ एक-एक बूंद टपकती है। और एक-एक बूंद के टपकने में भी दो बूंद के बीच में बीस सेकेंड का फासला है। एक बूंद गिरती है, फिर बीस सेकेंड बाद दूसरी बूंद गिरती है। यह अमेजान नदी का उदगम स्रोत है!

कितना सौभाग्य होता इस नदी का कि यहीं तृप्त हो जाती और संतुष्ट हो जाती। तो यह एक बूंद ही रह जाती! शायद बूंद भी न रह जाती। लेकिन यह अमेजान सागर बन जाती है। यात्रा करती है असंतोष की--और आगे, और आगे, और आगे, भागी चली जाती है।

भारत की प्रतिभा बूंद रह गई है, सागर नहीं बन पाई है। संतोष पकड़ गया है। जो है, चुपचाप स्वीकार कर लो। हमारे सारे शिक्षक समझा रहे हैं, आवश्यकताएं कम करो। हमारे सारे शिक्षक समझा रहे हैं, सिकुड़ो, सिकुड़ो, सिकुड़ो, बिलकुल बूंद रह जाओ। हमारे शिक्षक समझा रहे हैं, सब सिकोड़ो। जीवन कहता है, फैलो; जीवन कहता है, विस्तार करो; जीवन कहता है, जाओ दूर को और अनंत को। और हमारे शिक्षक कहते हैं, सिकुड़ो, सीमा छोटी करो, और छोटी करो; जितनी भी है, बड़ी है--और सिकुड़ो, और सिकुड़ो, और मर जाओ, कब्र में समा जाओ तो परम स्थिति को उपलब्ध हो जाओगे।

जिंदगी है विस्तार। जिंदगी का सूत्र है, विस्तार। यहां सब बड़ा होता है। एक बीज बो दें तो एक वृक्ष पैदा होता है। छोटा-सा बीज इतना बड़ा वृक्ष बन जाता है कि हजार बैलगाड़ियां उसके नीचे विश्राम करें। और एक छोटा-सा बीज बो दें तो उस वृक्ष पर अरबों बीज पैदा होते हैं। कितना फैलाव कर लिया एक बीज ने? एक छोटा-सा बीज फैल कर अरब बीज हो गया! अरब बीज बो दें, फैलता चला जाएगा, फैलता चला जाएगा। जीवन विस्तार है। मेरी दृष्टि में ब्रह्म का एक ही अर्थ है, उस शब्द का भी वही अर्थ है। ब्रह्म शब्द का अर्थ है फैलाव, विस्तार; जो फैलता ही चला जाता है; जो रुकता ही नहीं, जो रुकता ही नहीं, जो अंतहीन फैलाव है। ब्रह्म शब्द का भी मतलब यही है। ब्रह्म का मतलब होता है, दि एक्सपैंडिंग।

अभी आइंस्टीन के बाद यह पता चला है कि विश्व जो है, ब्रह्मांड जो है, वह फैल रहा है, वह एक्सपैंड कर रहा है। वह ठहरा हुआ नहीं है। सब तारे अरबों-खरबों मील प्रति सेकेंड के हिसाब से फैलते चले जा रहे हैं, जैसे कोई हवा का फुग्गा हो रबर का, और उसमें हम हवा भरते जाएं और वह फैलता चला जाए। ऐसा हमारा यह विश्व ठहरा हुआ नहीं है, यह फैलता चला जा रहा है; इसकी सीमाएं रोज बड़ी हो रही हैं। यह अंतहीन फैलाव है।

जिसे पहली दफे ब्रह्म शब्द सूझा होगा, वह आदमी अदभुत रहा होगा, क्योंकि ब्रह्म का मतलब होता है फैलना--फैलते ही चले जाना; फैलते ही चले जाना। लेकिन कितना अदभुत है, जिन लोगों ने ब्रह्म शब्द खोजा, उन्हीं लोगों ने सिकोड़ने की फिलासफी खोजी। वे कहते हैं, सिकुड़ते चले जाओ--अपरिग्रह, अनासक्ति, त्याग, वैराग्य--सिकुड़ो, छोड़ो, जो है उससे भागो और सिकुड़ते जाओ, सिकुड़ते जाओ, जब तक बिलकुल मर न जाओ तब तक सिकुड़ते चले जाओ।

संतोष इसका आधार बना, सिकुड़ना इसका क्रम बना, और भारत की आत्मा सिकुड़ गई और संतुष्ट हो गई। अब जरूरत है कि फैलाओ इसे। इस चौराहे पर फैलने का निर्णय लेना पड़ेगा। छोड़ो संतोष, लाओ नए असंतोष, नए डिसकंटेंट। दूर को जीतने की, दूर को पाने की, दूर को उपलब्ध करने की आकांक्षा को जगाओ, अभीप्सा को जगाओ, कि जो भी पाने योग्य है पाकर रहेंगे; जो नहीं पाने योग्य है उसको भी पाकर रहेंगे; तो इस मुल्क की प्रतिभा में प्राण आएं, तो इसके भीतर से कुछ जगे। क्योंकि जब भी कुछ जगता है तब फैलना चाहता है। और जब फैलना नहीं चाहते आप तो सोने के सिवाय कोई उपाय नहीं रह जाता। सो जाता है सब।

अभीप्सा जगानी है--डिसकंटेंट, असंतोष। कहीं अगस्तीन ने एक शब्द लिखा है, वह मुझे प्रीतिकर हो गया। लिखा है उसने, डिवाइन डिसकंटेंट। लिखा है, धार्मिक असंतोष; लिखा है, पवित्र असंतोष। सच में असंतोष से ज्यादा पवित्र और कुछ भी नहीं है, क्योंकि असंतोष गति है, विकास है, परिवर्तन है, क्रांति है।

इसलिए आज की चर्चा में यह दूसरा सूत्र दोहरा दूं और बात पूरी करूं। विश्वास नहीं, चाहिए विचार। अंधापन नहीं, चाहिए संदेह। अंधे विश्वासों की शृंखलाएं नहीं, चाहिए वैज्ञानिक चिंतन। संतोष नहीं, चाहिए असंतोष। अगति नहीं, चाहिए गति, चाहिए अभीप्सा--अनंत को जीत लेने की, फैल जाने की।

काश भारत के मन में अनंत की यह अभीप्सा जाग जाए तो हम अपनी सोई हुई आत्मा को पुनः जगा सकते हैं। और ध्यान रहे, जागा हुआ भारत ही निर्णय ले सकेगा कि इस चौराहे से कहां जाए; सोया हुआ भारत तो इसी चौराहे पर अफीम खाकर सोया रहेगा। अफीम के हमने अच्छे-अच्छे नाम रखे हैं। किसी अफीम की पुड़िया पर लिखा है राम-नाम। किसी अफीम की पुड़िया पर लिखा है भगवत-भजन। किसी अफीम की पुड़िया पर कुछ और, किसी अफीम की पुड़िया पर कुछ और। अफीम की पुड़िएं तैयार हैं। भक्तगण अफीम की पुड़िएं लेकर चौरस्ते पर सो रहे हैं। और आप पूछते हैं कि समाज परिवर्तन के चौराहे पर? और समाज अफीम खाकर सोया हुआ है! कौन परिवर्तन? कैसा चौराहा? कहां जाना है? झंझट में मत पड़ो--अफीम लो, सो जाओ। सोने से ज्यादा सरल, सुविधापूर्ण और कुछ भी नहीं है।

इस संबंध में जो भी प्रश्न हों वह आप लिख देंगे, कल सुबह हम उनकी बात कर सकें।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

एक एक कदम

संतति नियमन

मेरे प्रिय आत्मन् ,

संतति-नियमन या परिवार नियोजन पर मैं कुछ कहूं, उसके पहले दोत्तीन बातें मैं आपसे कहना चाहूंगा। पहली बात तो यह कहना चाहूंगा कि आदमी एक ऐसा जानवर है जो इतिहास से कुछ भी सीखता नहीं। इतिहास लिखता है, इतिहास बनाता है, लेकिन इतिहास से कुछ सीखता नहीं है। और यह इसलिए सबसे पहले कहना चाहता हूं कि इतिहास की सारी खोजों ने जो सबसे बड़ी बात प्रमाणित की है, वह यह कि इस पृथ्वी पर बहुत-से प्राणियों की जातियां अपने को बढ़ा कर पूरी तरह नष्ट हो गईं। इस जमीन पर बहुत शक्तिशाली पशुओं का निवास था, लेकिन वे अपने को बढ़ा कर नष्ट हो गए।

आज से पांच लाख वर्ष पहले--और जो मैं कह रहा हूं वह वैज्ञानिक अनुसंधान के आधार पर कहता हूं--जमीन पर हाथी से भी बड़ी छिपकलियां थीं। अब तो आपके घर में जो छिपकली बची है वही उसका एकमात्र वंशज है। वह इतना शक्तिशाली जानवर था। उसकी अस्थियां तो उपलब्ध हो गई हैं, वह सारी पृथ्वी पर फैल गया था। अचानक विदा कैसे हो गया? उसने इतने बच्चे पैदा कर लिए, इतनी संख्या बढ़ा ली कि जमीन उसके रहने को, उसको बसाने को असमर्थ हो गई। किसी युद्ध में वह प्राणी नहीं मरा, कोई एटम बम उस पर नहीं गिरा, भीतर से ही उसकी संख्या का एक्सप्लोजन उसकी मृत्यु बन गई। ऐसे और सैकड़ों प्राणी इस पृथ्वी पर रहे हैं और अपने को बढ़ा कर ही समाप्त हो गए।

मनुष्य-जाति फिर उस बिंदु के करीब आ रही है जहां वह अपने को बढ़ा कर समाप्त हो सकती है। बुद्ध के जमाने में इस देश की आबादी दो करोड़ थी। लोग अगर थोड़े खुशहाल थे तो कोई सतयुग के कारण नहीं। जमीन थी ज्यादा, लोग थे कम। अतीत की जो हम स्मृतियां लाए हैं खुशहाली की, वे खुशहाली की स्मृतियां नहीं हैं। वे स्मृतियां हैं जमीन के ज्यादा होने की, लोगों के कम होने की। भोजन ज्यादा था, लोग कम थे, इसलिए खुशहाली थी।

सारी मनुष्य-जाति की संख्या--और अगर हम दो हजार साल पीछे चले जाएं बुद्ध से--तो आज से पांच हजार साल पहले सारी पृथ्वी की संख्या ही दो करोड़ थी। आज पृथ्वी की संख्या साढ़े तीन अरब से ऊपर है, साढ़े तीन सौ करोड़ से ऊपर है। पृथ्वी उतनी ही है, संख्या साढ़े तीन सौ करोड़ से ऊपर है। और हम प्रतिदिन उस संख्या को बढ़ा रहे हैं। वह संख्या हम इतनी तेजी से बढ़ा रहे हैं कि अंदाजन डेढ़ लाख लोग रोज बढ़ जाते हैं। जितनी देर मैं यहां घंटे भर बात करूंगा उतनी देर मनुष्यता शांत नहीं बैठी रहेगी। उस घंटे भर में हजारों लोग बढ़ चुके होंगे। यह सदी पूरी होते-होते, अगर दुर्भाग्य से आदमी को समझ न आई तो इस सदी के पूरे होते-होते यानी आज से तीस वर्ष बाद, जमीन पर कोहनी हिलाने की जगह न रह जाएगी। तब सभाएं करने की बिलकुल जरूरत नहीं पड़ेगी। हम चौबीस घंटे सभाओं में होंगे।

यह हो नहीं पाएगा। यह हो नहीं पाएगा, कोई न कोई सौभाग्य, युद्ध, महामारी--कोई न कोई सौभाग्य मैं कह रहा हूं--इसे होने नहीं देगा। लेकिन अगर यह महामारी और युद्ध से हुआ तो मनुष्य की बुद्धि पर बड़ा कलंक लग जाएगा। जिन डायनासोर की मैंने बात की, जिन छिपकलियों की बात की जो हाथियों से बड़ी थीं, अब नहीं हैं, उनके पास कोई बुद्धि न थी, शरीर बहुत बड़ा था। वे कोई उपाय न कर सके, वे कुछ सोच न सके, वे मर गए।

हम सदा से ऐसा सोचते रहे हैं कि आदमी सोचने वाला प्राणी है, हालांकि आदमी सबूत नहीं देता है इस बात का। और अगर पचास सालों से आदमी को जितनी समझने की कोशिश की गई है, उतना ही पुराना विश्वास कमजोर हुआ है। वह जो रेशनल बीइंग का खयाल था, वह कमजोर हुआ है। आदमी भी विचारवान प्राणी नहीं मालूम पड़ता है, क्योंकि वह भी जो कर रहा है अत्यंत विचारहीन है। और सबसे बड़ी विचारहीनता जो हम कर सकते हैं आज, वह संख्या को बढ़ाए जाने की है। इस समय वह आदमी उतना बुरा नहीं है जो किसी की हत्या कर देता है; उतना बड़ा क्रिमिनल नहीं है। बल्कि कौन जाने वह आदमी कुछ अच्छा ही काम कर रहा है

एक एक कदम

मनुष्य के भविष्य को निर्मित करने के लिए! मैं नहीं कहता कि कोई हत्या करे। कोई हत्यारे को हत्या करने के लिए नहीं कह रहा हूं। लेकिन हत्या अब उतना बड़ा अपराध नहीं है जितना एक नए बच्चे को जन्म देना बड़ा अपराध है, क्योंकि हत्या से एक आदमी मरेगा और एक बच्चे को जन्म देने की प्रक्रिया अगर जारी रहती है तो पूरी मनुष्यता भी मर सकती है।

यह जो संभावना बनी कि इतनी संख्या हो जाए, यह संभावना मनुष्य की अपनी खोजों का परिणाम है। इथोपिया में लोग बहुत-सी बीमारियों से मरते हैं जो बीमारियां दूसरे मुल्कों में समाप्त हो गई हैं। इथोपिया का सम्राट हेल सिलासी अमरीका से एक छोटा-सा आयोग बुलाया डाक्टरों का जांच-पड़ताल के लिए इथोपिया में कि वहां की बीमारियों को कैसे रोका जा सके। उन्होंने जांच-पड़ताल की और रिपोर्ट दी। और रिपोर्ट में लिखा कि इथोपिया के लोग जो पानी पीते हैं वह बहुत ही संक्रामक कीटाणुओं से भरा हुआ है। और इथोपिया में लोग सड़क के किनारे गड्ढों में जो पानी भर जाता है वर्षा का, उसको भी पीने के काम में ले आते हैं। उसमें जानवर स्नान भी करते रहते हैं, पीते भी रहते हैं, और लोग भी उसको पी लेते हैं। उस कमीशन ने कहा कि अगर शुद्ध पानी पिलाने की चिंता की जाए तो इथोपिया की बहुत-सी बीमारियां विदा हो सकती हैं।

सम्राट ने उस कमीशन के आयोग की जो रिपोर्ट थी उसे रख कर कहा कि आपकी खोज के लिए धन्यवाद! लेकिन यह काम मैं कभी करूंगा नहीं। आयोग ने कहा, आप क्या कह रहे हैं? लोग मर रहे हैं! उस सम्राट ने कहा कि पहले मैं उन्हें बचाने का इंतजाम करूं और कल फिर उन्हें समझाने जाऊं कि बच्चे पैदा मत करो! यह झंझट दोहरी हो जाएगी। इधर मैं बचाऊं उनको बीमारी से और उधर बच्चे बढ़ेंगे, और कल फिर जगह-जगह लिखना पड़ेगा: कम बच्चे होते हैं अच्छे। उस सबकी पंचायत में मैं नहीं पडूंगा। वे अपने आप ही कम हो जाते हैं।

कठोर लगती है इथोपिया के सम्राट की बात, लेकिन हम सबको देख कर ऐसा लगता है कि शायद वह आदमी ठीक ही कहता है। आदमी ने मृत्यु दर कम कर दी और अनुपात बिगाड़ दिया। आज से डेढ़ सौ साल पहले, दो सौ साल पहले दस बच्चे पैदा होते तो नौ बच्चों के मरने की संभावना थी। आज दस बच्चे पैदा होते हैं तो नौ के बचने की संभावना हो गई है। और वह जो एक मर रहा है वह भी हमारी कुछ नासमझी से मर रहा है, नहीं तो उसको भी मरने की जरूरत नहीं है। और आज से दो सौ साल पहले दस बच्चों में वह जो एक बच जाता था, वह परमात्मा की कृपा से बचता था, हमारी समझदारी से नहीं। हमारी समझदारी से तो नौ मरते थे। तो एक-एक आदमी बीस-पच्चीस बच्चे भी पैदा करता था, क्योंकि बीस-पच्चीस बच्चे पैदा करके भी दो बच्चे बच जाएं तो बहुत था। आदत पुरानी है। बीस-पच्चीस बच्चे पैदा हम अभी भी करना चाहेंगे, लेकिन अब बीस-पच्चीस बच्चे ही बच जाते हैं।

मनुष्य ने मृत्यु दर पर रोक लगा दी है, बीमारी पर रोक लगा दी है। आज से पांच हजार वर्ष पुरानी जितनी कब्रें मिली हैं, उनमें जो हड्डियां मिली हैं, उनके निरीक्षण की खबर बड़ी अदभुत है। वह खबर यह है कि आज से पांच हजार साल पहले पच्चीस वर्ष सबसे बड़ी उम्र थी। पच्चीस वर्ष से पुरानी हड्डी कोई भी नहीं मिलती। पच्चीस साल की उम्र आखिरी उम्र रही हो...।

आज उम्र कई मुल्कों में सत्तर, अस्सी, पच्चासी के बिंदु को छू गई है। रूस में आज हजारों ऐसे लोग हैं जो डेढ़ सौ वर्ष के करीब हैं या पार कर गए हैं। और जितनी हमारी वैज्ञानिक समझ बढ़ी है उतनी संभावना बढ़ती जाती है कि हम चाहें तो आदमी की उम्र को अंतहीन लंबा कर सकते हैं।

यह हमारी संभावना बढ़ गई है। विज्ञान ने मौत को पीछे हटा दिया। लेकिन जन्म की, जो पैदा करने की हमारी आदत है वह अवैज्ञानिक है। वह उन दिनों की है जब विज्ञान नहीं था। प्रकृति जो है, भूल-चूक न हो जाए, इसलिए बहुत अबन्डेंस में प्रयोग करती है, बहुत अति में प्रयोग करती है। जहां एक गोली मारने से काम चल जाए वहां प्रकृति हजार गोली मारती है। क्योंकि अंधा खेल है, हजार में एक लग जाए तो बहुत। आदमी निशानेबाज हो गया है। अब वह एक ही गोली में मार सकता है लेकिन आदत उसकी पुरानी है।

प्रकृति के अबन्डेंस को समझना बहुत जरूरी है। एक बीज आप लगाते हैं, हजार-लाख बीज हो जाते हैं। यह इस बात की कोशिश है कि लाख बीज में कम से कम एक तो फिर पौधा बन सकेगा। एक पुरुष अपनी

साधारण स्वास्थ्य की जिंदगी में चार हजार संभोग कर सकता है, सहज। चार हजार। और अगर प्रत्येक संभोग बच्चा बन सके तो एक-एक आदमी चार-चार हजार बच्चों का बाप हो सकता है। लेकिन ये चार हजार नहीं हो पाते, क्योंकि स्त्री की क्षमता बहुत कम है। वह वर्ष में एक ही बच्चे को जन्म दे सकती है।

इसलिए जिन मुल्कों में बच्चों की ज्यादा जरूरत थी--जैसे मुसलमान मुल्कों में--क्योंकि युद्ध उन्हें करना था और लड़के मर जाते। इसलिए मोहम्मद ने चार-चार शादियों की छूट दी। पुरुष कम हों, औरतें ज्यादा हों, तो संख्या को कोई खतरा नहीं है, क्योंकि एक पुरुष पचास स्त्रियों से बच्चे पैदा कर सकता है। लेकिन अगर स्त्रियां कम हो जाएं और पुरुष कितने ही हों तो कुछ फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि स्त्री की क्षमता बहुत सीमित है। वह एक ही बच्चे को वर्ष में जन्म दे दे तो बहुत है।

चार हजार मैं कह रहा हूं, अगर एक-एक संभोग बच्चा बन जाए तो चार हजार बच्चे एक पुरुष पैदा कर सकता है। लेकिन एक संभोग में जितने वीर्याणु जाते हैं उसमें एक करोड़ बच्चे पैदा हो सकते हैं। एक संभोग में एक करोड़ वीर्याणु जाते हैं। अगर इसको भी हम हिसाब में लें तो एक करोड़ गुणित चार हजार, चार हजार करोड़ बच्चे एक पुरुष के व्यक्तित्व से पैदा हो सकते हैं। एक पुरुष इतने वीर्याणु पैदा करता है अपनी सामान्य उम्र में कि इस पृथ्वी पर जितने लोग हैं उससे कई सौ गुना ज्यादा। अभी साढ़े तीन अरब लोग हैं, साढ़े तीन सौ करोड़। चार हजार करोड़ बच्चों का बाप एक आदमी बन सकता है--बनता तो है तीन-चार का, छः-सात का, आठ का, लेकिन प्रकृति भूल-चूक न हो जाए इसलिए इंतजाम बहुत अतिरेक करती है।

तो हमने मृत्यु दर तो रोक ली और प्रकृति का जो अतिरेक का इंतजाम है उस अतिरेक को हम जारी रखें तो मनुष्य अपनी ही संख्या के दबाव से मर सकता है। और अब तो और नई संभावनाएं खुल गई हैं। वे संभावनाएं हमारी जो सामान्य सीमाएं थीं उनके भी पार ले जाती हैं। जैसे, आज वीर्याणु को सुरक्षित रखा जा सकता है। पुराने जमाने में यह संभावना न थी। आप रहते दुनिया में तो ही बाप बन सकते थे। अब आपका रहना आवश्यक नहीं है। आप हजार साल बाद भी किसी बेटे के बाप बन सकते हैं। आपके वीर्याणु को सुरक्षित रखा जा सकता है।

अब जरूरी नहीं है कि बाप मौजूद ही हो तभी बाप बने। अब पोस्ट-फादरहुड भी संभव है। बाप मर चुका हजार साल पहले, लेकिन उसका वीर्याणु सुरक्षित रखा जा सकता है। एक विशेष तापमान पर उसका वीर्याणु जिंदा रह सकता है और वह वीर्याणु कभी भी उपयोग किया जा सकता है। स्त्री के भी अंडे को बचाया जा सकता है और कभी भी कोई मां बन सकती है। अब मां बनने के लिए बेटे को पेट में ढोना ही अनिवार्य शर्त नहीं है।

ये सारी संभावनाएं जीवन को बचाने की बढ़ गईं, मौत को दूर हटाने की संभावना बढ़ गई, लेकिन हमारी जो आदतें हैं, हमारे जीवन के प्रति जो ढंग हैं, वे पूर्व-वैज्ञानिक स्थिति के हैं। इसलिए हम बच्चे पैदा किए चले जाते हैं। और हमें कुछ खयाल भी नहीं है कि जब बच्चा पैदा होता है तो अब भी हम बैंड-बाजा बजाते हैं। यह बैंड-बाजा उस दिन का है जब दस बच्चे पैदा होते और नौ मरते। स्वाभाविक, उस दिन बैंड-बाजा बजाने की बात थी। दस बच्चे पैदा होते और एक बचता, नौ मरते, तो जो बच्चा बच जाता उसके लिए बैंड-बाजा बजता, गांव में मिठाई बंटती, फूल बंटते, झंडियां लगतीं, स्वागत होता, यह बिलकुल स्वाभाविक था। आदत हमारी वही है। अब एक-एक बच्चा बहुत खतरनाक है, लेकिन बैंड-बाजा अब भी हम बजा रहे हैं, झंडियां लगा रहे हैं। एक-एक आदमी को खयाल नहीं है कि स्थिति पूरी बदल गई है। पूरी स्थिति बदल गई है। अब एक-एक बच्चा जो जमीन पर कदम रख रहा है वह एक्सीलरेट कर रहा है पूरी मनुष्य-जाति की मौत को, तीव्रता से करीब ला रहा है। यह मौत की जो बहुत अनजान, अचेतन हमारे मन में तीव्र छाया पड़ रही है इस छाया के बहुत परिणाम होने शुरू हुए हैं। जैसे कि बड़े नगरों में, कलकत्ता है, लोग सोचते हैं कि नक्सलवाद कोई कम्युनिज्म की बात है। ऊपरी अर्थों में ऐसा ही दिखाई पड़ता है। लेकिन जो बहुत गहरे खोजते हैं उनकी खोज यह है कि आदमी शांति में अगर रहें तो उनके बीच एक डेफिनिट स्पेस चाहिए, नहीं तो वे शांति में नहीं रह सकते। एक सुनिश्चित अवकाश चाहिए।

चूहों पर बहुत प्रयोग हुए हैं, शेरों पर बहुत प्रयोग हुए हैं, और उन्होंने बहुत अदभुत परिणाम दिए हैं। आदमी पर प्रयोग करने की हिम्मत तो अब भी आदमी नहीं जुटा पाया है, नहीं तो बहुत साफ परिणाम हो जाएं। एक

एक एक कदम

शेर को जिंदा रहने के लिए दस वर्ग मील की जगह चाहिए। अगर दस वर्ग मील की जगह में दस-पांच शेरों को रख दिया जाए तो उनके पागल होने की संभावना बढ़ जाती है।

यह जान कर आप हैरान होंगे कि जंगल में कोई जानवर आमतौर से पागल नहीं होता और अजायबघर में आमतौर से जानवर पागल हो जाता है। और अजायबघर में और जंगल में सिर्फ एक फर्क है, लिविंग स्पेस कम हो जाती है। बल्कि अजायबघर में जंगल की बजाय ज्यादा सुविधाएं हैं, ज्यादा वैज्ञानिक भोजन है, ज्यादा पीछे डाक्टर लगा है; सारा इंतजाम है जो जंगल में नहीं है--न कोई डाक्टर है, न भोजन की उचित सुविधा है, जानवर को भूखा भी रहना पड़ता है। लेकिन जंगल का जानवर पागल नहीं होता और अजायबघर के जानवर पागल हो जाते हैं।

जब मैंने पहली दफा अजायबघरों का अध्ययन किया और मुझे पता चला कि अजायबघर में जंगल के जानवर पागल हो जाते हैं, तो मुझे खयाल हुआ कि हमने आदमी के समाज को कहीं अजायबघर तो नहीं बना दिया है? क्योंकि आदमी जितना पागल हो रहा है उतना कोई जानवर पागल नहीं हो रहा है। और यह पागल होने का अनुपात भी जितनी सघन होती जाती है संख्या वहां बढ़ता चला जा रहा है--उसी अनुपात में बढ़ता चला जा रहा है।

आज भी आदिवासी हमारी बजाय कम पागल होता है। और हम भी आज बंबई की बजाय कम पागल होते हैं। और बंबई भी अभी न्यूयार्क की बजाय कम पागल होता है। तो आज अमरीका में मरीजों के लिए जितने बेड हैं, जितने बिस्तर हैं, उसमें आधे बिस्तर मानसिक मरीजों के लिए हैं। यह अनुपात बहुत अदभुत है। पचास प्रतिशत बेड अमरीका के मानसिक मरीजों के लिए हैं और प्रतिदिन पंद्रह लाख आदमी मानसिक इलाज के लिए पूछताछ कर रहे हैं। असल में शरीर का डाक्टर अमरीका में आउट आफ डेट हो गया है। मन का डाक्टर आधुनिक, अत्याधुनिक चिकित्सक है।

यह पागलपन तीव्रता से बढ़ता चला जाएगा। यह कई रूपों में प्रकट होगा। अब कलकत्ता में या बंबई में अगर पागलपन फूटता है और लोग बस जलाते हैं और ट्राम जलाते हैं, तो राजनैतिक नेता जो बातें हमें बताता है कि यह कम्युनिज्म का प्रभाव है, यह फलां वाद का प्रभाव है, यह ढिकां वाद का प्रभाव है, ये अखबार के तल की बुद्धि से खोजी गई बातें हैं। जिन्होंने अखबार से ज्यादा जिंदगी में और कुछ भी नहीं सोचा और खोजा है। वैसे भी राजनैतिक नेता होने के लिए बुद्धि की कोई जरूरत नहीं होती; बल्कि बुद्धि हो तो राजनैतिक नेता होना जरा मुश्किल हो जाता है; क्योंकि नेता होने के लिए अनुयायियों के पीछे चलना पड़ता है। और जहां बुद्धू अनुयायी हों वहां नेता बुद्धिमान होना बहुत मुश्किल है। उसे बुद्धू होना ही चाहिए, निष्णात बुद्धू होना चाहिए। राजनैतिक नेता कहता है कि कम्युनिज्म है, फलां है, ढिकां है--यह सब ऊपरी बकवास है; असली सवाल भीतर लिविंग स्पेस कम होती जा रही है।

सार्त्र ने एक छोटी-सी कहानी लिखी है। कहानी लिखी है कि सुना था मैंने नर्क के संबंध में कि वहां भट्टियां जलती हैं और पापी उन भट्टियों में जलाए जाते हैं। लेकिन मुझे कभी बहुत डर नहीं लगा। बल्कि कई दफे ऐसा भी लगा कि स्वर्ग जाना कुछ ठीक नहीं, मोनोटोनस होगा। ऐसे भी साधु-संत मोनोटोनस होते हैं, उनके साथ रहो तो बहुत जल्दी ऊब जाते हैं। इसलिए लोग जल्दी दर्शन करके चले जाते हैं। दर्शन शायद इसीलिए खोजना पड़ा ताकि ज्यादा देर साथ न रहना पड़े। नमस्कार और विदा।

साधु-संत जो हैं उबाने वाले हो जाते हैं। असल में एक-सा ही स्वर बजता रहे तो उबाने वाला हो ही जाता है। पापी आदमी थोड़ा रुचिपूर्ण होता है, इंट्रेस्टिंग होता है। सच तो यह है कि अच्छे आदमी के ऊपर कोई कहानी ही नहीं लिखी जा सकती। अच्छे आदमी की कोई कहानी ही नहीं होती। कहानी सिर्फ बुरे आदमी की होती है। अच्छे आदमी की असल में कोई बायोग्राफी नहीं होती, बुरे आदमी की होती है।

तो सार्त्र को खयाल है मन में कि स्वर्ग में तो कुछ रस न होगा। वहां तो दुनिया भर के सब उबाने वाले लोग इकट्ठे होंगे। और बैठे होंगे अपनी-अपनी सिद्ध-शिलाओं पर। वहां कुछ करने को ही नहीं बचा होगा। नर्क देखने लायक होगा। दुनिया भर के पापी जहां इकट्ठे हों वहां जिंदगी बड़ी रसपूर्ण होगी और वहां घटनाएं घटती होंगी फिनॉमिनल, ऐसी घटनाएं घटती होंगी जो कि सदियों तक लोग चर्चा करें। जहां सारे पापी इकट्ठे हो गए हैं!

लेकिन एक रात सपना उसने देखा कि वह नर्क में चला गया है। लेकिन वहां न बत्तियां हैं, न आग जल रही है, न कोई सड़ाया जा रहा है, न कोई गलाया जा रहा है--बल्कि एक और दूसरी मुसीबत है जो खयाल में ही नहीं थी। वह यह है कि एक छोटा-सा कमरा है जिसमें कोई एग्जिट नहीं है, जिसमें बाहर जाने का उपाय नहीं है, द्वार नहीं है। एक छोटा कमरा है और बाहर जाने का द्वार नहीं है। और तीन आदमी हैं। और तीन आदमियों के बस खड़े रहने के लायक जगह है। जरा हिलो-डुलो कि दूसरे से छू जाते हैं। और तीनों में से कोई किसी की भाषा नहीं समझता है। और तीनों को साथ रहना पड़ता है, प्राइवेसी बिलकुल नहीं है। बस वह इतना कमरा है, बस वे तीन आदमी हैं, कोई किसी की भाषा नहीं समझता है। जागो तो उन तीन को देखते रहो, सोओ तो वे तुमको देखते रहें। कुछ भी करो, वे तीन वहां हैं। पंद्रह मिनट बाद ही बस तीनों पागल होने लगते हैं। किसी ने किसी को कुछ किया नहीं, लेकिन लिविंग स्पेस नहीं है, बीच में जगह नहीं है। और जब जगह नहीं होती तो प्राइवेसी खतम हो जाती है। प्राइवेसी के लिए जगह चाहिए।

गरीब की सबसे बड़ी जो दुविधा है, वह है प्राइवेसी का अभाव--भोजन नहीं, कपड़े नहीं। गरीब का सबसे बड़ा दुख है कि उसकी प्राइवेट जिंदगी नहीं हो सकती। वह अगर अपनी पत्नी से भी बात कर रहा हो तो भी पड़ोसी सुनता है। वह अपनी पत्नी से भी प्रेम नहीं कर सकता बिना इसके कि उसके बेटे-बेटी जान लें। गरीब की सबसे बड़ी तकलीफ है कि वह अकेले में नहीं हो सकता। उसकी प्राइवेसी जैसी कोई चीज नहीं है।

समृद्धि का एकमात्र सुख है कि आप अकेले में हो सकते हैं और दुनिया और अपने बीच स्पेस पैदा कर सकते हैं, जगह पैदा कर सकते हैं, बड़ी जगह पैदा कर सकते हैं। और जितनी आपके और दूसरों के बीच जगह बढ़ जाती है, उतना ही चित्त शांत होता है। दूसरे की मौजूदगी तनाव लाती है। यह आपने कभी खयाल न किया होगा कि दूसरा कुछ भी न करे, सिर्फ मौजूद हो जाए, तो तनाव शुरू हो जाता है।

आप रास्ते पर चले जा रहे हैं अकेले, आप दूसरे आदमी होते हैं। रास्ता सन्नाटा है, कोई भी नहीं है, आप बिलकुल दूसरे आदमी होते हैं। हो सकता है, अपने से बात कर रहे हों। मौज में आ गए हों, गीत गुनगुना रहे हों। वह गीत जो अपने बेटे को आपने कभी नहीं गुनगुनाने दिया। लेकिन दो आदमी निकल आए सड़क पर, बस आप बदल गए। सिर्फ दो आदमियों की मौजूदगी आपको तत्काल टेंस कर देती है।

अगर बहुत ठीक से समझें तो दि अदर इज़ दि टेंशन--वह जो दूसरा है, वही तनाव है। वह जो दूसरा है। और वह दूसरे की मौजूदगी बढ़ती जा रही है। चारों तरफ कोई न कोई मौजूद है। सब तरफ कोई न कोई मौजूद है। कहीं भी चले जाएं, कोई न कोई मौजूद है। अकेले होने का कोई उपाय नहीं। इससे एक गहरा तनाव आदमी के मन पर बैठ रहा है। वह तनाव बढ़ती हुई संख्या का सबसे खतरनाक परिणाम है।

राजनीतिज्ञों को उसका पता नहीं है, क्योंकि वह उनके लिए सवाल नहीं है। उनके लिए सवाल यह है कि भोजन पूरा हो जाए, कपड़ा पूरा हो जाए। न हो पाए तो क्या होगा, उनके लिए सवाल यह है। मेरे लिए सवाल यह है कि अगर संख्या बढ़ती चली गई तो आदमी आत्मा खो देगा; क्योंकि आत्मा अकेलेपन में फ्लावर होती है। वह अकेलेपन में खिलती है, लोनलीनेस में।

लेकिन लोनलीनेस नहीं है। पहाड़ पर जाओ तो पीछे और आगे कारें लगी हुई वहां भी पहुंच जाती हैं। बीच पर जाओ तो आपके पहले भी कारें हैं, पीछे भी कारें हैं। अमरीका का बीच देखने लायक हो गया है। लोग तीसत्तीस, चालीस-चालीस, पचास-पचास, सौ-सौ मील छुट्टी के दिन भागे हुए चले जा रहे हैं। लेकिन गाड़ियां नेक टु नेक फंसी हैं। भाग रहे हैं कि एकांत में जा रहे हैं। लेकिन बहुत लोग जा रहे हैं वहां एकांत में। और बीच पर पहुंचे तो लाख आदमी वहां खड़े हैं!

भीड़ के बाहर होना मुश्किल हुआ जा रहा है। महावीर और बुद्ध बड़े ठीक मौके पर हो गए; अब होते तो पता चलता! अब जिसको होना है उसको पता चल रहा है कि क्या कठिनाई है। लिविंग स्पेस नहीं बची है, अकेले खड़े नहीं हो सकते। अकेला होना असंभव है। और जो आदमी अकेला न हो पाए, वह आदमी ठीक अर्थों में जी ही नहीं पाता। वह बाहर ही बाहर घूमता रहता है! कोई न कोई मौजूद है, कोई न कोई मौजूद है, सब तरफ कोई न कोई मौजूद है। कहीं न कहीं से कोई न कोई देख रहा है।

यह जो तनाव, यह जो इनर टेंशन है, इसका विस्फोट होगा। नई-नई शक्लों में यह डिस्ट्रक्शन बन जाएगा। तो दूसरे को मिटाने की इच्छा पैदा होती है। अब वह इच्छा बहुत रूप लेगी। पहली बात तो वह रेशनल बनेगी, बुद्धि खोजेगी। गरीब कहेगा, अमीर को मिटाना है; क्योंकि इस अमीर की वजह से हम शांत नहीं हो पाते हैं। कम्युनिस्ट कहेगा कि कम्युनिस्ट विरोधी को मिटाना है; इसके बिना हम जी नहीं सकते। हिंदू कहेगा मुसलमान को मिटाना है, मुसलमान कहेगा हिंदू को मिटाना है।

बहुत गहरे में हम दूसरे को मिटाना चाहते हैं, जगह बनाना चाहते हैं। तो गुजराती कह रहा है, महाराष्ट्रियन को मिटाना है। महाराष्ट्रियन कह रहा है, गुजराती को मिटाना है। बंगाली कह रहा है, मारवाड़ी को न टिकने देंगे कलकत्ते में। ये झगड़ा मारवाड़ी, गुजराती, महाराष्ट्रियन, हिंदू और मुसलमान का नहीं है, यह तो ऊपर से हमने शक्लें दी हैं, झगड़े को शेप दिए हैं। झगड़ा गहरे में यह है कि जगह बनानी है, दूसरे को हटाना है। अफ्रीकन कह रहा है, गैर-अफ्रीकन हटो। अमरीकी कह रहा है, गैर-अमरीकी को न घुसने देंगे। आस्ट्रेलियन कह रहा है, बस बंद दरवाजा, अब कोई भीतर न आ सकेगा। चीनी कह रहा है, बंद कैसे करोगे दरवाजा! हम इतने ज्यादा हो रहे हैं कि हम सब दरवाजे तोड़ कर घुस जाएंगे।

कोई चीन का कसूर नहीं है हिंदुस्तान पर हमला, संख्या का भारी दबाव है। जैसे किसी थैले में जरूरत से ज्यादा चीजें भर दी हैं, और वह थैला फटने लगा है, और चारों तरफ चीजें गिरने लगी हैं--ऐसी चीन की हालत है। सत्तर, पचहत्तर, अस्सी करोड़--चीन की सामर्थ्य के बाहर हो गई--थैला छोटा पड़ गया, आदमी ज्यादा हैं। वे चारों तरफ गिर रहे हैं और उनका कोई उपाय नहीं है।

सारी दुनिया जिस तकलीफ में खड़ी है आज, वह है कि आदमी और आदमी के बीच जगह चाहिए। अगर जगह खत्म हो जाएगी तो बड़ा मुश्किल हो जाएगा। चूहों पर बहुत प्रयोग हुए हैं। बड़े अदभुत अनुभव हुए हैं। अनुभव ये हैं कि एक चूहे को भी रहने के लिए जगह चाहिए। रहने के लिए ही नहीं सिर्फ, दूसरे चूहे और उसके बीच में एक खास फासला चाहिए। कभी-कभी मिलें, मुलाकात हो, फिर अलग हो जाएं, नहीं तो कठिनाई हो जाती है। तो चूहों की लिविंग स्पेस को कम करके बहुत प्रयोग किए गए हैं। और पाया गया कि कितने चूहे इकट्ठे रख दिए जाएं एक कमरे में तो चूहे पागल होने शुरू हो जाते हैं; और कितने चूहे कम किए जाएं तो वे स्वस्थ होने शुरू हो जाते हैं।

जंगल में जाकर आपको जो अच्छा लगता है उसका कारण जंगल कम, दूसरे लोगों का न होना ज्यादा है। पहाड़ पर जाकर आपको अच्छा लगता है उसका कारण पहाड़ कम, वह दि अदर, वह दूसरा नहीं है आंख गड़ाए हुए कि आपके कपड़ों के भीतर देख रहा है चारों तरफ से; चारों तरफ आंखें ही आंखें घेरे हुए हैं; वे नहीं हैं वहां, आप हल्के हो पाते हैं, आप लेट पाते हैं, जो आपको करना होता है कर पाते हैं। वह असंभव हुआ जा रहा है।

मनुष्य का मन मरने के पहले बिलकुल पागल हो जाएगा। अगर इस पृथ्वी पर संख्या बढ़ती चली गई, कोई उपाय काम न आया...। और अभी जो हम उपाय कर रहे हैं उनसे कोई आशा नहीं बंधती। वे बहुत ही कमजोर उपाय हैं। वे ऐसे हैं जैसे कोई समुद्र को खाली कर रहा हो छोटे-से बर्तन में भर-भर कर; गिलास में भर-भर कर खाली कर रहा हो। मामला बहुत बड़ा है और सरकारें जो भी कर रही हैं वह बहुत छोटा है। उससे कुछ हल होने वाला नहीं है; बहुत कठिनाई है, उससे कुछ हल होने वाला नहीं है। क्योंकि वह जो हम हल करते हैं वह इतना छोटा है! और जब तक हम हल कर पाते हैं, दस-पांच लाख लोगों को पैदा होने से रोकते हैं, तब तक करोड़ लोग पैदा हो चुके होते हैं। वह इतने विस्तार पर प्रश्न है।

इसके पहले कि दुनिया समाप्त हो भीड़ से, भीड़ पागल होगी। पागल होना शुरू हो गई है। आज ठीक-ठीक मानसिक रूप से स्वस्थ आदमी का सर्टिफिकेट किसी को भी देना मुश्किल है। ज्यादा से ज्यादा इतना ही कह सकते हैं कि यह आदमी अभी पागल नहीं हुआ है, यह नहीं कह सकते कि यह आदमी ठीक है। डिग्री का फर्क रह गया है पागल में और सब में। क्वांटिटी का फर्क है, क्वालिटी का नहीं है। ऐसा ही है कि कोई निन्यानबे डिग्री पर उबल रहा है, कोई अट्ठानबे डिग्री पर उबल रहा है, कोई पंचानबे डिग्री पर उबल रहा है, कोई सौ

डिग्री पर जाकर छलांग लगा गया है और पागलखाने के भीतर है! आप निन्यानबे डिग्री पर हैं तो आप कह रहे हैं, बेचारा! और आपको पता नहीं कि निन्यानबे डिग्री किसी भी समय सौ डिग्री हो सकती है।
विलियम जेम्स अपनी जिंदगी में एक दफा पागलखाना देखने गया, फिर दोबारा गया नहीं। क्योंकि पागलखाने में देख कर उस बुद्धिमान आदमी को जो खयाल आया वह यह था कि ये सारे लोग पागल हो गए हैं। उसमें उसका कोई परिचित मित्र भी था जो कल तक बिलकुल ठीक था। लौट कर घर वह बिस्तर पर लग गया और उसने अपनी पत्नी से कहा कि अब मैं बहुत डर गया हूं। उसकी पत्नी ने कहा, क्या हो गया है तुम्हें?
उसने कहा कि कल तक जो ठीक था, वह आज पागल हो गया है; मैं आज तक ठीक हूं, कल का क्या भरोसा है! और अपने को मैं यह नहीं समझा सकता कि वह बेचारा पागल हो गया है; क्योंकि कल तक वह भी अपने को समझाता रहा था कि कोई दूसरा बेचारा पागल हो गया है। नहीं, मैं डर गया हूं क्योंकि मेरे भीतर वह सब मौजूद मुझे मालूम पड़ता है जिसका विस्फोट हो जाए तो मैं पागल हो जाऊंगा।
हम सबके भीतर वह मौजूद है। कभी एकांत कोने में चले जाएं कमरे के, घर के द्वार बंद कर लें। कागज पर जो भी मन में चलता हो लिख डालें दस मिनट ईमानदारी से। किसी को बताना नहीं है, नहीं तो ईमानदारी न बरत पाएंगे। वह दूसरा आया कि आप बेईमान हुए। वह चाहे दूसरा आपकी पत्नी ही क्यों न हो, आपका बेटा ही क्यों न हो। दूसरे के सामने ईमानदार होना बहुत कठिन परीक्षा है। अपने ही सामने ईमानदार होना बहुत कठिन मामला है। दस मिनट दरवाजे पर ताला लगा लेना और लिखना जो भी मन में चल रहा हो दस मिनट; जो भी, उसमें कुछ हेर-फेर मत करना। तो दस मिनट के बाद उस कागज को आप किसी को दिखा न सकेंगे। और अगर दिखाएंगे तो कोई भी कहेगा, किस पागल ने लिखी हैं ये बातें? ये किसके दिमाग से निकली हैं? और आप खुद ही हैरान होंगे कि यह सब मेरे भीतर चल रहा है!
चारों तरफ तनाव घिर गया है। इस तनाव के बहुत परिणाम हैं। पहला परिणाम तो यह हुआ है कि सब तरफ कलह है, विग्रह है, कांफ्लिक्ट है। वर्ग के नाम से, धर्म के नाम से, संप्रदाय के, जाति के, भाषा के--इस सबके बहुत गहरे में मानसिक कलह हमारे भीतर है। वह फैल रही है, और वह बढ़ती जाएगी। संख्या बढ़ेगी, और वह बढ़ेगी, क्योंकि आदमी को भी जीने के लिए जगह चाहिए। वह जीने की जगह उसकी छिन गई है। हमने मौत रोक दी और जन्म को रोकने को हम तैयार नहीं हैं।
यह जो कलह है, यह रोज युद्धों की शक्ल में भभकेगी, फूटेगी। हमने अगर हाइड्रोजन और एटम बना लिया है तो आकस्मिक नहीं है यह। असल में इस जगत में कुछ भी आकस्मिक नहीं होता। और इस जगत में जो होता है उसके भीतर बहुत गहरे नियम काम करते हैं।
जैसे, उदाहरण के लिए...। अब यह बड़े मजे की बात है न कि दुनिया में स्त्री-पुरुषों की संख्या करीब-करीब बराबर रहती है। यह बड़े मजे की बात है! इसका कौन इंतजाम करता है! इतनी बड़ी दुनिया है, इसमें कभी ऐसा नहीं हो जाता कि एकदम पुरुष ही पुरुष बहुत हो जाएं या स्त्रियां ही स्त्रियां बहुत हो जाएं। एक सौ सोलह लड़के पैदा होते हैं और सौ लड़कियां पैदा होती हैं। और एक सौ सोलह लड़के भी बड़ी व्यवस्था से पैदा होते हैं, क्योंकि सेक्सुअली मैच्योर होने के पहले तक सोलह लड़के मर जाते हैं और संख्या बराबर हो जाती है।
असल में लड़का कमजोर है लड़की से। लड़की का रेसिस्टेंस ज्यादा है। औरतों की प्रतिरोधक शक्ति ज्यादा है। वे बीमारी को ज्यादा झेल सकती हैं, कष्ट को ज्यादा झेल सकती हैं, परेशानी को ज्यादा झेल सकती हैं और टूटने से बच सकती हैं। पुरुष की क्षमता रेसिस्टेंस की कम है। इसलिए प्रकृति एक सौ सोलह लड़के पैदा करती है और सौ लड़कियां पैदा करती है। लड़कियां बच जाती हैं, सोलह लड़के इस बीच डूब जाते हैं, संख्या चौदह-पंद्रह वर्ष की उम्र होते-होते तक बराबर हो जाती है।
यह बड़ी हैरानी की बात है कि कोई इनर सूत्र काम करते हैं जिंदगी में। आदमी ने उन भीतरी सूत्रों पर कई तरफ से हमला कर दिया है और इसलिए बहुत इनर बैलेंस को बिगाड़ दिया है। तो हमने मृत्यु पर तो हमला बोल दिया--बीमारी नहीं होने देंगे, प्लेग नहीं होने देंगे, महामारी नहीं आने देंगे, मलेरिया नहीं होने देंगे, मच्छर को नहीं बचने देंगे--हमने सब इंतजाम कर दिया है उधर से; मरने की तरफ हमला बोल दिया है। इधर जन्म की तरफ से जो धारा चल रही है वह धारा उसी हिसाब से चल रही है जिस हिसाब से मलेरिया का

मच्छर होता तब चलनी चाहिए थी; प्लेग होती, महामारी होती, तब चलनी चाहिए थी; काला ज्वर होता, तब चलनी चाहिए थी।
वह प्रकृति अपने ही अनुशासन से काम करती है। वह अनुशासन उसका चल रहा है भीतर। वह अनुशासन भीतर चल रहा है और हमने अनुशासन का एक छोर बदल दिया है। इसलिए मैं संतति-नियमन के अत्यंत पक्ष में हूं। दूसरा छोर हमें बदलना पड़ेगा। मौत को अगर हमने छुआ है तो जन्म को छूना पड़ेगा। अब जन्म को प्रकृति के अंधे हाथों में नहीं छोड़ा जा सकता। लेकिन इस संबंध में भी कुछ बातें मैं कहना चाहूंगा।
मेरे लिए यह सवाल भोजन, कपड़े-लत्ते का कम, मेरे लिए यह सवाल मनुष्य के आधुनिक विकास का ज्यादा है। मेरे लिए सवाल यह है कि अगर पूरी मनुष्यता को पागल होने से बचाना है तो संतति पर नियमन करना पड़ेगा, परिवार नियोजन को गति देनी पड़ेगी। और गति जैसी हम दे रहे हैं वैसी नहीं चलेगी, क्योंकि उसके भी खतरनाक परिणाम हो सकते हैं जो हम कर रहे हैं अभी।
इसके पहले कि मैं उस संबंध में कुछ कहूं, मैं आपसे यह भी कह दूं कि जैसे मैंने कहा कि प्रकृति का एक भीतरी इंतजाम चलता है, वह अंधा है। तो जब भी हम इस तरह की स्थिति पैदा कर लेते हैं तब फिर उस स्थिति को मिटाने के लिए भीतरी बैलेंस की शक्तियों को काम में लग जाना पड़ता है। इसलिए एक तरफ हम मौत को धक्का देकर हटा दिए और दूसरी तरफ सामूहिक मौत को निमंत्रण देकर बुला रहे हैं। वह तीसरा महायुद्ध सामने खड़ा है। मुझे लगता है कि अगर संख्या बढ़ती गई तो तीसरे महायुद्ध को रोका नहीं जा सकता। अगर तीसरा महायुद्ध रोकना हो तो संख्या दुनिया की एकदम नीचे गिरानी जरूरी है। नहीं तो तीसरा महायुद्ध होगा। और तीसरा महायुद्ध साधारण युद्ध नहीं, जैसे पहले हुए। तीसरा महायुद्ध अंतिम युद्ध है।
आइंस्टीन से मरने के पहले किसी ने पूछा था कि तीसरे महायुद्ध के संबंध में कुछ बताएं। आइंस्टीन ने कहा कि तीसरे के बाबत कुछ नहीं बताया जा सकता, लेकिन चौथे के संबंध में कुछ पूछते हो तो मैं बता सकता हूं। उस आदमी ने कहा, तीसरे के बाबत नहीं बता सकते तो चौथे के बाबत? आइंस्टीन ने कहा, चौथे के बाबत एक बात निश्चित है कि चौथा कभी नहीं होगा! क्योंकि तीसरे के बाद आदमी के बचने की उम्मीद ही नहीं तो चौथा युद्ध करेगा कौन? इसलिए चौथे के बाबत निश्चित वक्तव्य उसने दिया है कि चौथे के बाबत एक बात निश्चित है।
लेकिन तीसरे में सबके विनाश की संभावना बढ़ती चली जाती है। इधर आदमी पागल हो रहा है, इधर उसके तनाव बढ़ रहे हैं, इधर वह मरने-मारने को, दूसरे को मिटाने को नए-नए सिद्धांत खोज रहा है। कभी फासिज्म, कभी कम्युनिज्म, कभी कुछ, कभी कुछ--दूसरे को कैसे मारो, काटो--और अच्छे सिद्धांतों की आड़ में काटना आसान हो जाता है। इसलिए दुनिया में जो बहुत अदभुत किस्म के पागल हैं वे हमेशा आइडियोलॉजिस्ट पागल होते हैं। साधारण पागल तो पागलखानों में बंद है। असाधारण पागल कभी स्टैलिन हो जाता है, कभी हिटलर हो जाता है, कभी माओ हो जाता है--वह ऊपर छाती पर बैठ जाता है, सिद्धांत पकड़ लेता है। और सिद्धांत की आड़ में जब वह पागलपन का खेल करता है तो हिसाब लगाना मुश्किल हो जाता है कि वह क्या कर रहा है।
हिटलर ने, अकेले हिटलर ने कोई साठ लाख लोगों की हत्या की जर्मनी में। अकेले स्टैलिन ने कोई अंदाजन करोड़ लोगों की हत्या की रूस में। लेकिन कोई हत्यारा न कहेगा स्टैलिन को। यह मजा है सिद्धांत के साथ। करोड़ आदमियों को मारने वाला हत्यारा नहीं है, और आप एक आदमी को मार दें तो आप हत्यारे हैं! लेकिन वह करोड़ आदमियों को सिद्धांत से मार रहा है। उनके ही हित में उनको ही मार रहा है। वह कहता है, हम तुम्हारी ही सेवा कर रहे हैं। सिद्धांत का बड़ा पक्का, फिर सब ठीक हो जाता है। फिर मारा जा सकता है।
तीसरा महायुद्ध अनिवार्य हो जाएगा अगर संख्या नहीं रुकती है दस सालों में। तो उन्नीस सौ अस्सी के बाद पार होना बहुत मुश्किल है। तीसरा महायुद्ध अनिवार्य हो जाएगा, वही उपाय रहेगा इनर बैलेंस का। लेकिन वह बैलेंस बड़ा महंगा पड़ने वाला है। उसमें सब मिट जाने की संभावना है। और इसीलिए मैं एक और आपको सूचना दूं कि मेरी नजर में चांद पर जाने की जो इतनी तीव्र आकांक्षा मनुष्य को पैदा हुई है उसका आज कोई कारण नहीं है--आज। लेकिन उसके कारण को अगर हम गहरे मनुष्य की चेतना में खोजने जाएं तो मुझे वह

इनर बैलेंस फिर वापस खयाल में आता है। अब पृथ्वी शायद आने वाले पचास वर्षों में रहने योग्य जगह न रह जाएगी। आदमी को हमें किसी दूसरे ग्रह पर बचाने का उपाय करना पड़ेगा।

पुरानी कहानी आपने सुनी होगी ईसाइयों की, नोह की। महाप्रलय हुई और सारे लोग मर गए। और परमात्मा ने नोह से कहा कि यह नाव तू संभाल और एक-एक प्राणि-जाति के एक-एक जोड़े को इसमें बचा ले। और यह नाव को ले जा उस जगह जहां कि प्रलय नहीं है; वहां इतने लोगों को बचा ले ताकि फिर से सृष्टि हो सके। नोह की कहानी सच है या झूठ, कहना मुश्किल है। वैसे झूठ कहना बहुत मुश्किल है, क्योंकि नोह की कहानी दुनिया की समस्त जातियों में अलग-अलग रूपों में प्रचलित है। जब दुनिया इकट्ठी नहीं थी और कोई एक-दूसरे को नहीं जानता था तब भी वह कहानी प्रचलित है, महाप्रलय की, कि कभी महाप्रलय हुई, जब सब डूब गया और सिर्फ स्पेसिमेन बचाए जा सके। एक आदमी, एक औरत; एक गधा, एक गधी; एक बंदर, एक बंदरिया; इस तरह स्पेसिमेन बचा कर फिर सब कार्य शुरू करना पड़ा।

इसकी संभावना बढ़ती जाती है कि अगर तीसरा महायुद्ध पृथ्वी पर होता है तो पृथ्वी पर बचने का तो कोई उपाय नहीं होगा; कुछ लोगों को पृथ्वी के बाहर ले जाना पड़ेगा। मगर यह सब जरूरी नहीं है, यह सब रोका जा सकता है। रोकने का क्रम वहां है जहां संतति हम पैदा कर रहे हैं।

लेकिन हम वैकल्पिक रूप से रोक रहे हैं। हम वॉलंटरिली रोकने के लिए लोगों से कह रहे हैं--समझा रहे हैं, स्वेच्छा से समझ जाओ।

नहीं, स्वेच्छा से समझने का मामला नहीं है यह; यह कम्पलसरी हो तो ही संभव हो सकता है। अनिवार्य हो! वैकल्पिक नहीं, ऐच्छिक नहीं, ऐसा नहीं कि हम आपको समझा रहे हैं कि आप दो या तीन बच्चे...या भी लगाने से खतरा है। या बिलकुल नहीं चाहिए बीच में; क्योंकि या का कोई अंत नहीं है। दो बच्चे यानी दो बच्चे। तीसरा बच्चा यानी नहीं। और यह 'नहीं' आपकी इच्छा पर छोड़ी गई तो हल होने वाला नहीं है; क्योंकि आदमी की चेतना इतनी कम है कि उसे पता ही नहीं है कि कितनी बड़ी समस्या है। यह उस पर नहीं छोड़ा जा सकता है। यह अनिवार्य करना होगा। इसे इतनी बड़ी अनिवार्यता देनी होगी जैसे इमरजेंसी की अनिवार्यता होती है। इससे बड़ी कोई इमरजेंसी नहीं है। और वैकल्पिक, स्वेच्छा से, वॉलंटरिली जो हम करवा रहे हैं उसका नुकसान भी बहुत है, उसका नुकसान बहुत गहरा है।

बड़ा मजा यह है कि जब हम स्वेच्छा से लोगों को समझाते हैं तो जो समझदार वर्ग है वह समझ जाता है और जो नासमझ वर्ग है वह नहीं समझता। तो समझदार वर्ग अपने बच्चे कम कर लेगा और नासमझदार वर्ग अपने बच्चे बढ़ा लेगा। तो उसका बैलेंस मेरिट का और बुद्धि का...भयंकर नुकसान होगा।

आमतौर से वैसे भी समझदार आदमी जिम्मेवार नहीं है बच्चे बढ़ाने में। आमतौर से जो सुशिक्षित है, सोच-विचार वाला है, और जिसको थोड़ी भी बुद्धि है, वह दुनिया की फिक्र भले न करता हो, लेकिन उसके घर में एक रेडियो चाहिए, रेडियोग्राम चाहिए, या टी वी चाहिए या एक कार चाहिए, तो उसे बच्चे रोकने पड़ते हैं। तो जो थोड़ा-सा भी सोच-विचार करता है अपना ही सिर्फ, वह बच्चे नहीं बढ़ाता।

इसलिए फ्रांस अकेला मुल्क है जहां जनसंख्या गिर रही है। मैं मानता हूं कि वह सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता का सबूत दिया है। अकेला मुल्क है जहां जनसंख्या गिर रही है, जहां की सरकार पोस्टर लगाती है कि भई जनसंख्या थोड़ी बढ़ाओ। क्योंकि डर यह है कि दूसरों की संख्या बहुत हो जाए और फ्रांस की संख्या कम हो जाए, तो फ्रांस में स्पेस बन जाए तो चारों तरफ से लोग भीतर प्रवेश कर जाएंगे, फ्रांस रोक नहीं सकेगा।

बुद्धिमान मुल्कों की संख्या ठहर गई है। स्वीडेन हो या स्विट्जरलैंड हो, नार्वे हो या बेल्जियम हो, ठहर गई है। यूरोप की संख्या ठहरने के करीब पहुंच गई है। एशिया विक्षिप्त हुआ जा रहा है। इसलिए पश्चिम को सबसे बड़ा खतरा है। आपके लिए वे अगर बर्थ कंट्रोल के साधन मुफ्त भेज रहे हैं तो ऐसा मत सोचना कि सिर्फ परोपकार है।

पश्चिम के लिए सबसे बड़ा खतरा है कि एशिया उसको डुबा देगा कीड़े-मकोड़ों की तरह। सबसे बड़ा खतरा है इस वक्त पश्चिम को। एक तो उसने संपन्नता पा ली है, समृद्धि पा ली है, सभ्यता पा ली है। हजारों-हजारों साल के

मनुष्य के सपने आज जब पूरे होने के करीब आए हैं, तब एशिया इतने बच्चे पैदा कर रहा है कि वे सारी दुनिया को दबा डालेंगे।

ये बैरियर ज्यादा दिन तक काम नहीं कर सकेंगे राष्ट्रों की सीमाओं के। और न वीसा और पासपोर्ट ज्यादा दिन रोकेंगे। संख्या जैसे ही सीमा के बाहर होगी, कोई नियम काम नहीं करेगा। लोग एक-दूसरे के मुल्कों में प्रवेश कर जाएंगे और जहां जगह होगी वहां हावी हो जाएंगे। क्योंकि मरता क्या न करता! अगर मरना ही है तो फिर कोई पुलिस नहीं रोक सकती; कोई बैरियर नहीं रोक सकता।

एशिया सबसे बड़ा खतरा हो गया है सारे जगत के लिए। इसलिए सारा जगत चिंतित है, सहायता पहुंचाता है। बर्थ कंट्रोल की एड्स लो, पिल्स लो, सारा इंतजाम करो, हम तैयार हैं आपकी सेवा में, लेकिन कृपा करके आप बच्चे पैदा मत करो। आप अपने लिए तो खतरा हो ही, आप सारी दुनिया की सुविधा के लिए भी खतरा हो।

लेकिन अगर इसे हमने स्वेच्छा पर छोड़ा तो हम नुकसान में पड़ेंगे। समझदार आदमी बच्चे पैदा करता ही नहीं, कम करता है। आमतौर से समझदार आदमी बच्चे कम पैदा करता है। अगर समझदार ही लोग हों तो संख्या थोड़ी कम होगी हर पीढ़ी के बाद। लेकिन गैर-समझदार बच्चे बहुत जोर से पैदा करता है। वह समझ लेना जरूरी है कि वह क्यों करता है। गैर-समझदार बच्चे इतने ज्यादा क्यों पैदा करता है? एक मजदूर या एक किसान इतने बच्चे क्यों पैदा करता है?

इसके दो कारण हैं। एक तो समझदार आदमी सेक्स के अतिरिक्त कुछ और सुख भी खोज लेता है जो गैर-समझदार नहीं खोज पाता। संगीत है, साहित्य है, धर्म है, ध्यान है--कुछ और रास्ते भी खोज लेता है जहां से उसे आनंद मिल सकता है। वह जो गैर-समझदार है उसके लिए आनंद सिर्फ एक है, वह सेक्स से संबंधित है। वह आनंद और कहीं भी नहीं है। न वह रात एक उपन्यास पढ़ कर बिता सकता है कि इतना डूब जाए कि पत्नी को भूल सके, न वह एक दिन ध्यान में प्रवेश कर पाता है, न बांसुरी में उसे कोई रस है। नहीं, उसका चित्त उस जगह नहीं आया जहां कि आदमी यौन के ऊपर सुख खोज लेता है।

जितने आदमी यौन के ऊपर सुख खोज लेते हैं उनकी यौन की भूख निरंतर कम होती चली जाती है। अगर वैज्ञानिक अविवाहित रह जाते हैं तो कोई ब्रह्मचर्य साधने के कारण नहीं। या संत अविवाहित रह जाते हैं तो कोई ब्रह्मचर्य साधने की वजह से नहीं। कुल कारण इतना है कि उनके जीवन में आनंद के नए द्वार खुल जाते हैं। वे इतने बड़े आनंद में होने लगते हैं कि यौन का आनंद अर्थहीन हो जाता है।

गरीब के पास, अशिक्षित के पास, ग्रामीण के पास, श्रमिक के पास और कोई मनोरंजन नहीं है। इसलिए जिन मुल्कों में मनोरंजन की जितनी कमी है उन मुल्कों में संख्या उतनी तेजी से बढ़ेगी। उसके पास एक ही मनोरंजन है; वह जो प्रकृति ने उसे दिया है। मनुष्य-निर्मित कोई मनोरंजन उसके पास नहीं है। लेकिन यह सुनेगा नहीं, क्योंकि यह सुनने की स्थिति में भी नहीं है। यह बच्चे पैदा करता चला जाएगा। और समझदार वर्ग सुन लेगा और चुप हो जाएगा, बच्चे पैदा नहीं करेगा। तो वैसे ही जिन मुल्कों की प्रतिभा कम है वह और कम हो जाएगी। सौंदर्य कम हो जाएगा, स्वास्थ्य कम हो जाएगा, प्रतिभा कम हो जाएगी।

इसलिए मैं वॉलंटरिली बर्थ कंट्रोल के सख्त खिलाफ हूं। बर्थ कंट्रोल के पक्ष में हूं, संतति-नियमन के सख्त पक्ष में हूं, लेकिन स्वेच्छा से संतति-नियमन के सख्त खिलाफ हूं। संतति-नियमन चाहिए अनिवार्य, कम्पलसरी, तो ही अर्थपूर्ण हो सकता है। और तब मुल्क की प्रतिभा को गति दी जा सकती है। और इसके लिए कितने और पैमाने उपयोग करने चाहिए वह मैं दो-चार बातें करूं।

एक तो मेरी दृष्टि में संतति-नियमन और बहुत-से इंप्लीकेशंस लिए हुए है, और बहुत अंतर्गर्भित संबंध हैं उसके। असल में गरीब आदमी ज्यादा बच्चे पैदा करने में उत्सुक होता है, क्योंकि गरीब आदमी के लिए ज्यादा बच्चे मुसीबत नहीं लाते, सुविधा लाते हैं। अमीर आदमी ज्यादा बच्चे पैदा करने में उत्सुक नहीं रहता, क्योंकि ज्यादा बच्चे उसे सुविधा नहीं लाते, असुविधा लाते हैं। अगर मेरे पास लाख रुपए हैं और मैं दस बच्चों को पैदा करूं तो दस-दस हजार बंट जाएंगे, मैं लखपति न रह जाऊंगा। लेकिन अगर मेरे पास कुछ भी नहीं है और मैं दस बच्चे पैदा करूं तो दस बच्चे आठ-आठ आने लाकर सांझ मुझे दे देंगे।

तो जब तक हम गरीब को, वह जो नीचे बड़ा वृहद जन-समूह है, उसको भी ऐसी व्यवस्था न दे सकें कि बच्चे बढ़ना उसके लिए असुविधा का कारण हो जाए, तब तक वह सुनने वाला नहीं है। लेकिन अभी हमारी बड़ी अजीब स्थिति है। यह हमारा मुल्क तो कंट्राडिक्शंस का...कोई हिसाब ही नहीं है हमारे मुल्क के विरोधाभासों का। इधर हम सारे मुल्क को समझाते हैं कि बच्चे कम पैदा करो, उधर जिसके बच्चे ज्यादा हैं उस पर टैक्स कम लगाते हैं, जिसके बच्चे कम हैं उस पर टैक्स ज्यादा लगाते हैं। इधर समझाते हैं बच्चे नहीं, उधर अविवाहित पर ज्यादा टैक्स लगाते हैं, विवाहित पर कम टैक्स लगाते हैं।

पागलपन की दुनिया हो सकती है कोई तो इस मुल्क में है। अगर बच्चे पैदा करने कम करने हैं तो विवाहित पर ज्यादा टैक्स लगाना पड़ेगा और अविवाहित को सुविधाएं देनी पड़ेंगी कि वह ज्यादा देर तक अविवाहित रह जाए। ज्यादा बच्चों पर ज्यादा टैक्स लगाना पड़ेगा। बहुत उलटा मालूम पड़ेगा, क्योंकि हम सोचते हैं कि ज्यादा बच्चे हैं बेचारे को सहायता पहुंचाओ। ज्यादा बच्चों पर टैक्स ज्यादा लगाना पड़ेगा। हर नया बच्चा ज्यादा टैक्स घर में लाए तो बच्चे को लाने का डर शुरू होगा। लेकिन हर बच्चा घर में टैक्स कम करे तो लाना अच्छा ही है।

इस वक्त जिनके घर में ज्यादा बच्चे हैं वे बड़े फायदे में हैं, वे पार्टनरशिप बना लेते हैं सबकी। टैक्स कम कर लेते हैं। एक ओर हम चाहते हैं बच्चे कम हो जाएं और दूसरी ओर जो भी हम कर रहे हैं वे पचास साल पुराने नियम हैं जब कि ज्यादा होने में कोई खतरा न था।

तो संतति-नियमन अनिवार्य चाहिए। और जीवन के सब पहलुओं पर ध्यान देना चाहिए कि कहां-कहां बच्चों को रोकने में क्या-क्या करना पड़ेगा। वहां सारी फिक्र कर लेनी चाहिए।

दूसरी बात: यह हमारा अब तक का जो जगत था, और अब जो नहीं हो सकेगा, उस जगत से बहुत-सी नैतिकताएं और बहुत-से सिद्धांत हम लेकर आए हैं, जो कि होने वाले जगत में बाधा बनेंगे, उन्हें हमें तोड़ना पड़ेगा। उनके साथ ताल-मेल नहीं हो सकता।

अब जैसे गांधी जी खिलाफ थे संतति-नियमन के और उन्होंने जिंदगी में जितनी गलत बातें कही हैं उसमें यह सबसे ज्यादा गलत बात है। वे संतति-नियमन के खिलाफ थे। वे कहते थे, बर्थ कंट्रोल से अनीति बढ़ जाएगी। उनको इसकी फिक्र नहीं है कि बर्थ कंट्रोल नहीं हुआ तो मनुष्यता मर जाएगी, उनको फिक्र इसकी है कि बर्थ कंट्रोल से कहीं अनीति न बढ़ जाए। कहीं ऐसा न हो कि कोई क्वांरी लड़की किसी लड़के से संबंध रखे और पता न चल पाए।

पता चलाने की किसी को जरूरत क्या है? यह पीपिंग टाम की प्रवृत्ति बड़ी खतरनाक है। पता चलाने की जरूरत क्या है? यह अनैतिक है यह पता चलाने की इच्छा ही। पड़ोस की लड़की का किस से क्या संबंध है, अगर कोई आदमी उसमें उत्सुक होकर पता लगाता फिर रहा है तो यह आदमी अनैतिक है। यह अनैतिक इसलिए है कि यह दूसरे आदमी की जिंदगी में तनाव पैदा करने की कोशिश में लगा है। इसे प्रयोजन क्या है?

लेकिन पुराना सब नीतिवादी इसमें उत्सुक था कि कौन क्या कर रहा है। वह सबके घरों के आस-पास घूमता रहता है। पुराना महात्मा जो है वह हर आदमी का पता लगाता फिरता है कि कौन क्या कर रहा है। मनुष्यता मर जाए, इसकी फिक्र नहीं, महात्मा को इस बात की फिक्र है कि कहीं कोई अनीति न हो जाए। हालांकि महात्मा की फिक्र से अनीति रुकी नहीं है। गांधी जी के आश्रम में भी वही होता जो कहीं भी हो रहा है। होता था; होगा ही। ठीक गांधीजी की आंख के नीचे वही होगा; उसमें कुछ फर्क पड़ने वाला नहीं है। क्योंकि जिसे हम अनीति कह रहे हैं अगर वह स्वभाव के विपरीत है तो स्वभाव बचेगा और अनीति नहीं बचेगी।

और अनीति क्या है? कभी हमने नहीं सोचा कि एक स्त्री को दस बच्चे पैदा होते हैं तो उसकी पूरी जिंदगी बर्बाद हो जाती है। इसको हमने अनीति नहीं माना। हमने तो कहा कि स्त्री का तो काम ही मां होना है। मां होने का मतलब हमने समझा है कि मां होने की फैक्ट्री होना है। तो उससे फैक्ट्री का काम हमने लिया है। अगर हम पुरानी स्त्री की आज से चालीस साल पहले की, और आज भी गांवों में स्त्री की जिंदगी एक फैक्ट्री की जिंदगी है, जो हर साल एक बच्चा दे जाती है और फिर दूसरे बच्चे की तैयारी में लग जाती है।

जो हम मुर्गी के साथ कर रहे हैं वह हम स्त्री के साथ भी किए हैं। लेकिन यह अनीति नहीं थी। एक आदमी अगर बीस बच्चे अपनी पत्नी से पैदा करे तो दुनिया का कोई भी ग्रंथ और कोई भी महात्मा नहीं कहता कि यह आदमी अनैतिक है।

यह आदमी अनैतिक है। इसने एक स्त्री की हत्या कर दी। उसके व्यक्तित्व में कुछ न बचा, वह सिर्फ एक फैक्ट्री रह गई। लेकिन यह अनैतिक नहीं है। यह अनैतिक नहीं है। अनैतिक हम न मालूम क्या, किस चीज को बनाए हुए हैं। और वे समझाएंगे--गांधी जी, विनोबा जी--वे कहेंगे कि नहीं, ब्रह्मचर्य साधो।

अब ये पांच हजार साल से ब्रह्मचर्य की शिक्षा दे रहे हैं और इनके ब्रह्मचर्य की शिक्षा वे अभी भी दिए जाते हैं। वे कहते हैं, संतति-नियमन नहीं; हां, ब्रह्मचर्य साधो। और वह ब्रह्मचर्य कोई एकाध साधता हो, साध लेता हो, तो भी वह कोई मेजर नहीं है, उससे कुछ होने वाला नहीं है। यह प्रश्न इतना बड़ा है! यह प्रश्न इतना बड़ा है कि इस प्रश्न को ब्रह्मचर्य से हल नहीं किया जा सकता। पांच हजार साल सबूत हैं, गवाह हैं, कि पांच हजार साल से शिक्षक समझा-समझा कर मर गए, कितने ब्रह्मचारी तुम पैदा कर पाए हो? गांधी जी भी चालीस-पचास साल मेहनत किए, कितने ब्रह्मचारी पैदा कर गए हैं? सच तो यह है कि खुद के ब्रह्मचर्य पर भी उन्हें कभी भरोसा नहीं था, आखिरी वक्त तक भरोसा नहीं था। कहते थे, जागते में तो मेरा काबू हो गया है, लेकिन नींद में लौट आता है।

लौट ही आएगा। जागने में जो काबू करेगा उसका लौटेगा ही। उसमें और कोई कसूर नहीं है। कसूर खुद का है। दिन भर संभाले हैं तो नींद में संभालना शिथिल हो जाता है। तो नींद में, जो दिन भर नहीं किया है, वह नींद में करना पड़ता है। और नींद में करने से दिन में करना बेहतर है, कम से कम नींद तो खराब नहीं होती।

ब्रह्मचर्य से चाहते हैं कि संख्या का अवरोध हो जाएगा--नहीं होगा। साधु-संत यह भी समझा रहे हैं कि तुम हकदार नहीं हो, परमात्मा बच्चे भेजता है तुम रोकने के हकदार नहीं हो। और यही साधु-संत अस्पताल चलाते हैं! परमात्मा बीमारी भेजता है, उसको क्यों रोकते हैं? और परमात्मा मौत भेजता है तो अस्पताल क्यों भागते हैं?

अभी मैं आज रास्ते से निकल रहा था तो एक अस्पताल देखा, आयुर्वेदिक, कोई स्वामी का नाम लिखा है, फलां-फलां स्वामी आयुर्वेदिक हॉस्पिटल। तो स्वामी अस्पताल किसलिए खोल रहा है--आयुर्वेदिक ढंग से मरने के लिए लोगों को?

मरने के ढंग भी होते हैं। कोई एलोपैथिक ढंग से मरता है, कोई आयुर्वेदिक ढंग से, कोई होमियोपैथिक ढंग से ही मरने के शौकीन होते हैं! इसलिए खोला है यह अस्पताल?

निश्चित ही, बचाने के लिए खोला होगा लोगों को। तो अगर बच्चे परमात्मा भेज रहा है तो मौत कौन भेज रहा है? तो मौत से लड़ने को वैज्ञानिक हैं और बच्चे पैदा करवाने के लिए महात्मा आशीर्वाद देते रहेंगे।

ये सब क्रिमिनल्स हैं जो इस तरह की बातें कर रहे हैं। अगर जन्म पर रोक लगाने में परमात्मा का विरोध है तो फिर सब अस्पताल बंद, फिर मौत पर भी रोक नहीं लगानी चाहिए। तो फिर बैलेंस अपने आप हो जाएगा। फिर कोई तकलीफ न होगी।

लेकिन बड़ा आश्चर्य है। इसलिए मैं कह रहा हूं, हमारा मुल्क बड़े कंट्राडिक्शंस में जीता है।

नहीं, जो मौत के साथ किया है वह जन्म के साथ करना पड़ेगा; और नहीं करना है तो दोनों के साथ मत करो। फिर मच्छर पलने दो, मलेरिया फैलने दो, प्लेग...फिर सब ठीक हो जाएगा। फिर कोई बर्थ कंट्रोल की जरूरत नहीं पड़ेगी। लेकिन उसकी जरूरत इसलिए पड़ी कि प्रकृति तो अपना इंतजाम कर लेती थी, आदमी ने एक कोने से रुकावट डाल दी। अब दूसरे कोने पर रुकावट डालते हैं तो वे कहते हैं परमात्मा आड़े आता है। परमात्मा बिलकुल आड़े नहीं आता, लेकिन महात्मा सदा परमात्मा के नाम से जिंदगी की जरूरी चीजों में बहुत आड़े आते रहे हैं। उनका बल जरूर है। उनका बल है, अंधे आदमी को उनका बल स्वाभाविक है। और जब वह अंधा बल अंधे आदमी की, उसकी ही मनोवृत्ति को सहयोग देता है तब तो बहुत सहारा मिल जाता है। तब वह कहता है, बिलकुल ठीक है, हम बच्चे रोकने वाले कौन हैं!

मुझे एक छोटी-सी कहानी याद आती है वह मैं कहूं और बात पूरी करूं।

एक एक कदम

बंगाली में एक उपन्यास है। उस उपन्यास में एक परिवार बद्री-केदार की यात्रा को गया है। बंगाली गृहिणी, उसका परिवार है। बंगाली गृहिणी भक्त है, एक संन्यासी भी रास्ते में साथ हो लिया है। बंगाली गृहिणी खाना बनाती है तो पहले संन्यासी को खिलाती है फिर पति को। स्वभावतः, मेहमान भी है संन्यासी भी है। और जो-जो अच्छा है पहले संन्यासी को, रास्ते का मामला है। संन्यासी इतना खा जाता है कि बाकी के लिए फिर समझो बचा-खुचा ही रह जाता है। पति बहुत परेशान है।

असल में पति और पत्नी के बीच अगर संन्यासी खड़ा हो जाए तो पति सदा ही परेशान हो जाता है। उसकी समझ में भी नहीं पड़ता कि क्या हो रहा है और पत्नी की दहशत की वजह से कह भी नहीं सकता कि क्या हो रहा है। सब मंदिर पति चला रहे हैं, वाया पत्नी। सब साधु-संत पति पाल रहे हैं, वाया पत्नी। पत्नी वहां जा रही है तो वह सब पल रहा है।

तो वह संन्यासी सब खा जाता है। फिर पीछे से कोई यात्री आया है और 'संदेश' लाया है, बंगाली मिठाई लाया है। पति बहुत डरा हुआ है, वह बड़ा शौकीन है संदेश का। वह कहता है कि बचेगी थोड़े ही, वह तो संन्यासी सब पहले ही साफ कर जाएगा। दूसरे दिन वह बड़ा भयभीत है। संदेश रखे गए, संन्यासी सब साफ कर गया। उसने कहा, रोटी आज रहने दो। वह सब संदेश खा गया। अब पति को इतनी मुश्किल हुई कि एक संदेश भी नहीं बचा। तो उसने संन्यासी से कहा, आप हम पर खयाल न करें तो कम से कम अपने पर तो खयाल करें। उस संन्यासी ने कहा कि तू नास्तिक है। अरे जिसने पेट दिया वही खयाल करेगा, हम परमात्मा के बीच में बाधा नहीं आते। संन्यासी ने कहा, जिसने पेट दिया है वही खयाल भी करेगा, हम बीच में बाधा डालने वाले कौन?

संदेश संन्यासी डालेगा, बाधा नहीं डालेगा वह परमात्मा पर छोड़ देगा। आदमी की बेईमानी बहुत पुरानी है। इस मामले में बहुत महंगी पड़ेगी, जनसंख्या के मामले में बहुत महंगी पड़ेगी। साफ समझ लेना जरूरी है कि बच्चे रोकना ही पड़ेंगे अगर पूरी मनुष्यता को बचाना है। अन्यथा आपके बढ़ते बच्चों के साथ पूरी मनुष्यता का अंत हो सकता है।

ये मैंने थोड़ी-सी बातें कहीं। यह सवाल तो बहुत बड़ा है और इसके बहुत पहलू हैं। इस पर सोचना। मेरी बात को मान लेने की कोई जरूरत नहीं है। न तो मैं कोई गुरु हूं, न कोई महात्मा हूं और न परमात्मा की तरफ से कोई सर्टिफिकेट लेकर आया हूं कि जो कहता हूं वह सही है। जैसे एक सामान्य आदमी अपनी बात कहता है वैसा आदमी हूं। एक लेमैन, जो निवेदन भर कर सकता है, आग्रह नहीं कर सकता। जो यह नहीं कह सकता कि यही सत्य है, जो इतना ही कह सकता है कि ऐसा मुझे दिखाई पड़ता है।

ये बातें मैंने आपसे कहीं, आप सोचना। शायद कोई बात आपके विचार से ठीक मालूम पड़े तो वह आपकी हो जाएगी। फिर वह मेरी नहीं है, फिर उसमें मेरा कोई जिम्मा नहीं है। वह आपकी और आप जिम्मेवार हैं। और अगर कोई बात ठीक दिखाई न पड़े तो क्षण भर भी मोह मत करना, उसे बिलकुल फेंक देना। बहुत मोह हो चुका, तो गलत बातों की भीड़ इकट्ठी हो गई है सिर पर, उस कचरे को एकदम फेंक देना है। जो मेरी बात गलत दिखाई पड़े उसे एक मिनट भीतर मत रखना। लेकिन सोच लेना फेंकने के पहले। और अगर सोचने से कुछ ठीक दिखाई पड़ जाए तो वह आपका हो जाएगा।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।